साप्ताहिक कृषि समाचार-पत्र

खेती संदेश

मूल्य : 6/- रुपए

All Subject to Patiala Jurisdiction.

WEEKLY KHETI SANDESH

E-mail : khetisandesh2025@gmail.com

RNI Regd. No. PBBIL/25/A0210 • Chief Editor : Parminder Kaur • Issue Dt. 12-07-2025 • Vol.1 No.2 • H.O. : # 9-A, Ajit Nagar, Patiala-147001 (Pb.) • Mob. 90410-14575 • Page 12

अधिक पैदावार हासिल करने के लिए संतुलित खादों का उपयोग बेहद जरूरी

बुवाई-रोपाई के बाद पौधों में हो जाती है ज़िंक और आयरन की कमी

धान की फसल की अधिक पैदावार लेने के लिए संतुलित खादों का प्रयोग करना बहुत जरूरी है।

आमतौर पर किसान यूरिया, डी.ए.पी. या सुपर खाद का प्रयोग करते हैं, जिससे मिट्टी में पोषक तत्वों का संतुलन बिगड़ जाता है और फसल की पैदावार प्रभावित होती है। धान और बासमती की अधिक पैदावार लेने के लिए मैक्रो एवं माइक्रो पोषक तत्वों का इस्तेमाल आवश्यक मात्रा और आवश्यकता के अनुसार करना चाहिए।

अधिक उपज देने वाली किस्मों का रोपण सूक्ष्म पोषक तत्वों और जैविक खादों का कम प्रयोग मिट्टी में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी का मुख्य कारण है, जिसकी पूर्ति करना बहुत जरूरी है। धान की फसल से अधिक उपज लेने के लिए किसानों को समय रहते सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी के बारे में जागरूक करना जरूरी है। धान की फसल में मुख्य रूप से ज़िंक और आयरन की कमी देखी जाती है। फसल के विकास में ज़िंक की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, जो विभिन्न एंजाइमों का एक हिस्सा है। धान की पौध लगाने के 2-3 सप्ताह बाद ज़िंक की कमी के लक्षण दिखाई देते हैं, जिसके कारण पौधे बौने रह जाते हैं और उनकी जड़ें बहुत खराब तरीके से पकड़ती हैं। ऐसे पौधों की पत्तियां जंग लगी और भूरी हो जाती हैं। पत्ती की मध्य शिरा का रंग बदल जाता है और बाद में पत्तियां सूख जाती हैं। ज़िंक के अलावा धान की फसल में आयरन की भी कमी हो जाती है। आयरन पौधों में क्लोरोफिल के संश्लेषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जिससे प्रकाश संश्लेषण संभव हो पाता है।

पत्तियां भूरी लगें तो ज़िंक की कमी

ज़िंक की कमी दूर करने हेतु कद्दू की बुवाई के समय 25 किलो ज़िंक सल्फेट हेप्टाहाइड्रेट (21 प्रतिशत) या 16 किलो ज़िंक सल्फेट मोनोहाइड्रेट (33 प्रतिशत) प्रति एकड़ डालें। यदि बोई गई फसल में कमी के लक्षण दिखाई दें, तो तुरन्त खेत के कमी वाले क्षेत्रों में 10 किलो ज़िंक सल्फेट हेप्टा-हाइड्रेट या 6.5 किलो ज़िंक सल्फेट मोनोहाइड्रेट प्रति एकड़ डालें।

पत्तियों में पीलापन दिखे तो आयरन की कमी

जहां पानी की कमी होती है, वहां पौधे की नई उभरती पत्तियां रोपण के लगभग तीन सप्ताह बाद पीली पड़ जाती हैं। इससे पौधे मर जाते हैं। पीलापन दिखे तो फसल को अविलंब पानी दें। पत्तियों पर 1 प्रतिशत आयरन का छिड़काव एक सप्ताह के अंतराल पर करें। इसके लिए एक किलोग्राम फेरस सल्फेट को 100 लीटर पानी में मिला कर प्रति एकड़ के हिसाब से छिड़काव करें।

पैराक्वाट की चपेट में मूंग

सेहतमंद फसल पर मुनाफे का जहरीला असर

पंकज चतुर्वेदी

डॉक्टरों के अनुसार पैराक्वाट डाइक्लोराइड के इस्तेमाल से उगाई गई मूंग के सेवन से कैंसर, लंग्स, किडनी, लिवर फेल्योर, पार्किंसंस रोग का खतरा रहता है। सबसे बड़ा जोखिम यह है कि मूंग के दानों में पैराक्वाट के अवशेष रह जाते हैं।

डॉक्टर अक्सर मरीजों को मूंग दाल खाने की सलाह देते हैं, लेकिन अधिक मुनाफे के लोभ में अब जो मूंग बाजार में आ रही है वह सामान्य बीमार व्यक्ति को गंभीर रोग का शिकार बना सकती है। चूंकि मध्य प्रदेश में देश में मूंग की फसल का 35 प्रतिशत उत्पादन होता है। शुरुआत में राज्य सरकार ने मूंग की सरकारी खरीदी पर हिचकिचाहट दिखाई थी तो सियासत भी गर्मा गई थी। सरकार भी अपनी जगह ठीक ही थी। यह बात तंत्र समझ गया था कि अधिक फसल और इसे जल्दी पकाने के लिए किसान जिस रसायन का इस्तेमाल कर रहे है, असल

में वह जहर है। यदि मध्य प्रदेश के किसान यह अनुचित तरीका अपना रहे हैं तो देश के अन्य राज्यों में भी यही हो रहा होगा। विदित हो म.प्र. में इस वर्ष मूंग का सरकारी खरीदी मूल्य 8558 रुपये प्रति क्विंटल तय किया गया है। यह दाम बीते चार साल में 1362 रुपये बढ़े हैं। बढ़ते दाम, तीसरी फसल की लालसा और कम रकबे में अधिक उत्पाद के चलते किसान का मूंग की तरफ आकर्षण भी बढ़ा और लालच भी।

म.प्र. के कृषि विभाग ने राज्य शासन को बताया कि किसान मूंग की फसल में खरपतवार नाशक दवा पैराक्वाट डाइक्लोराइड, जिसे स्थानीय रूप से 'सफाया' भी कहा जाता है, का बड़े पैमाने पर उपयोग कर रहे हैं। कई देशों में यह प्रतिबंधित है, लेकिन यहां किसान इसका उपयोग धड़ल्ले से कर रहे हैं। किसान जानते हैं कि मूंग की फसल खेतों में एक साथ नहीं पकती। कुछ पौधे जल्दी तो कुछ देर से पकते हैं। ऐसे में मजदूरों से तुड़ाई में समय, खर्च ज्यादा लगता है। फसल को एकसाथ सुखाने के लिए पैराक्वाट तत्काल असर करती है। इससे एक दिन में पूरी फसल सूख जाती है, फिर हार्वेस्टर से कटाई हो जाती है। यही नहीं, इसके इस्तेमाल से कच्ची मूंग के दाने भी चमकीले हरे दिखते हैं। इस तरह इनका वजन अधिक लगता है और इससे दाम अधिक मिल जाते हैं। दरअसल किसान रबी और खरीफ की फसल के बीच तीन महीनों में मूंग की फसल तैयार करने के लिए यह जहरीला जतन कर रहे हैं।

भारत में कोई तीस लाख मीट्रिक टन मूंग का उत्पादन होता है और यह समूचे देश में बीमारों के लिए पथ्य भोजन मानी जाती है। मूंग में मौजूद स्टार्च और प्रोटीन छोटे अणुओं में टूटकर जल्दी पच जाते हैं। इसमें कम मात्रा में रेजिन होता है, जो पेट में गैस नहीं बनाता। 100 ग्राम मूंग में लगभग 105 कैलोरी और बहुत कम वसा होता है। आयुर्वेद के अनुसार मूंग दाल त्रिदोष नाशक मानी जाती है – यानी यह वात, पित्त और कफ को संतुलित करती है। बीमारियों में इसका सेवन शरीर को संतुलन में लाता है। मूंग में फ्लावोनॉयड्स, कैंफफेरॉल, विटामिन-सी और फेनोलिक यौगिक होते हैं, जो शरीर की रोग-प्रतिरोध क्षमता को मजबूत करते हैं।

डॉक्टरों के अनुसार पैराक्वाट डाइक्लोराइड के इस्तेमाल से उगाई गई मूंग के सेवन से कैंसर, लंग्स, किडनी, लिवर फेल्योर, पार्किंसंस रोग का खतरा रहता है। सबसे बड़ा खतरा यह है कि मूंग के दानों में पैराक्वाट के अवशेष रह जाते हैं। जब इन दानों का सेवन किया जाता है, तो ये सीधे मानव शरीर में पहुंचते हैं। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एपिडेमियोलॉजी 2024 में प्रकाशित शोध के अनुसार पैराक्वाट डाइक्लोराइड की रासायनिक संरचना एमपीपी प्लस नामक एक जहरीले पदार्थ से मिलती-जुलती है, जो कि एमपीटीपी नामक रसायन से बनता है। यह वही रसायन है, जिससे 1983 में मनुष्यों में पार्किंसंस जैसा रोग पैदा हुआ था। यह हाइली टॉक्सिक हर्बीसाइड है। थोड़ा-सा भी सेवन या सांस के माध्यम से संपर्क जानलेवा होता है। मुंह और गले में जलन, उलटी-दस्त, पेट में तेज दर्द प्रमुख लक्षण हैं। इससे लंग्स, लिवर, किडनी फेल्योर का खतरा रहता है। सांस के जरिए लेने पर फेफड़ों में फाइब्रोसिस हो सकता है। यह कैंसर कारक होने के साथ ही आंखों और श्वसन तंत्र को प्रभावित करता है। यह केमिकल आर्गेनो फास्फेट फैमिली का है, जिसकी बेहद कम मात्रा किसी रूप में लेने से

उलटी-दस्त और पेट में मरोड़ हो सकती है। कुछ ज्यादा होने पर आंतें सिकुड़ जाती हैं। सबसे बड़ी बात इस कीटनाशक का अभी तक कोई एंटी डोज नहीं उपलब्ध है।

मध्य प्रदेश सरकार समय-समय पर कहती रही कि मूंग की फसल को सुखाने के लिए पैराक्वाट का उपयोग करना कानूनन गलत है, इसके बावजूद इस्तेमाल बढ़ता ही जा रहा है। जब 20 लाख टन दाल मंडी में आ ही गई तो चाहे सरकार खरीदे या फिर व्यापारी, झट तो आम लोगों की नसों में घुलना यही है। विदित हो भारत में पैराक्वाट डाइक्लोराइड 24 प्रतिशत एसएल फॉर्मूलेशन पंजीकृत है और इसका उपयोग आलू, कपास, रबर, चाय, मक्का, चावल, अंगूर और जलीय खरपतवारों पर खरपतवार नियंत्रण के लिए अनुमोदित है। हालांकि, इसे मूंग जैसी दालों की फसल को सुखाने के लिए इस्तेमाल करना भारतीय कीटनाशक अधिनियम का उल्लंघन है। जब किसान इसका इस्तेमाल खेत में कर रहा होता है तब उसे रोका या उस पर अपराध पंजीबद्ध किया नहीं जाता। अकेले मध्य प्रदेश ही नहीं, उड़ीसा और पंजाब में भी जहरीली मूंग के मामले सामने आए हैं।

संयुक्त राष्ट्र के खाद्य और कृषि संगठन और विश्व स्वास्थ्य संगठन के कीटनाशक प्रबंधन के अंतर्राष्ट्रीय मानकों के अंतर्गत 40 से अधिक देशों ने पैराक्वाट को प्रतिबंधित किया है। इनमें यूरोपियन यूनियन, स्वीडन जैसे विकसित देशों के साथ-साथ चीन, थाईलैंड जैसे हमारे पड़ोसी भी हैं। हालांकि, यह मिट्टी में आंशिक रूप से निष्क्रिय हो जाता है, फिर भी यह लंबे समय तक मिट्टी में बना रह सकता है, जिससे मिट्टी के सजीव जीवाणु, कवक, कृमि, और अन्य सूक्ष्म जीवों पर इसका प्रतिकूल असर होता है। मिट्टी की उर्वरता और जलधारण क्षमता घट जाती है।

जहर से लहलहाते खेत बना रहे पैराक्वाट पर सरकार की नीति ही ढुलमुल है तिस पर किसान की लापरवाही भी है। स्वास्थ्य चिंताओं के चलते केरल और ओडिशा जैसे कुछ राज्यों ने इसे प्रतिबंधित कर दिया है। हालांकि, इन प्रतिबंधों का असर सीमित है, क्योंकि इसका अवैध या गलत उपयोग अब भी बड़े पैमाने पर हो रहा है। आज जरूरत है कि इस पर पूर्ण प्रतिबंध हो। मूंग का जहर होना एक प्रकार से दवा का बेअसर होना है।

किसानों को फायदा... सब्ज़ियों व फलों की खेती को मिलेगा बढ़ावा

पानीपत में बन रहा 4 हजार एमटी का कोल्ड स्टोर

पानीपत ज़िला के किसान अब परांपरागत खेती को छोड़कर बागवानी विभाग के सहयोग से सब्ज़ियों व फलों की खेती करने लगे है, लेकिन सब्ज़ियों व फलों के दाम कम-ज्यादा होने पर उन्हें स्टोर करने के लिये किसानों को कोल्ड स्टोर की जरूरत पड़ती है। पानीपत में अभी 2-3 ही छोटे कोल्ड स्टोर है और उन सभी की क्षमता भी करीब 2 हजार मीट्रिक टन ही है। विशेषज्ञों के अनुसार सब्ज़ियों व फलों की गुणवता को बरकार रखने के लिये आधुनिक बलास्ट तकनीक वाला बड़ा कोल्ड स्टोर कामयाब होता है, लेकिन जिला में ऐसा कोई भी कोल्ड स्टोर नहीं है, लेकिन अब बापौली खंड के गांव बेगमपुर ताहरपुर का किसान राकेश देशवाल अब बलास्ट तकनीक पर आधारित पानीपत का सबसे बड़ा 4 हजार मीट्रिक टन का 5 मंजिला कोल्ड स्टोर बना रहा है। कोल्ड स्टोर का निर्माण का करीब 60 फीसदी

पानीपत के ताहरपुर में बन रहा 4 हजार एमटी का कोल्ड स्टोर।

निर्माण कार्य पूरा हो चुका है।

किसान राकेश के अनुसार 3 माह में कोल्ड स्टोर बनकर तैयार हो जाएगा। यह कोल्ड स्टोर 5 मंजिला होगा और इसमें सब्ज़ियों व फलों आदि के बैग मजदूरों की बजाये कनवेयर बेल्ट द्वारा ही कोल्ड स्टोर की सभी मंजिलों पर जाएंगे। इस स्टोर के बनने से जिला के सब्जी व फल उत्पादक किसान मंडियों में भाव कम होने पर अपने उत्पाद इसमें रख सकेंगे और जब सब्जी मंडियों में भाव ज्यादा होगा तो उनको बेच सकेंगे। किसान राकेश देशवाल कोल्ड स्टोर के साथ ही आलू की प्रोसेसिंग यूनिट भी लगा रहा है और इससे जिला में आलू की खेती को भी बढ़ावा मिलेगा।

बागवानी विभाग 35 फीसदी तक अनुदान दे रहा अनुदान

बागवानी विभाग के डीएचओ डॉ. शार्दूल शंकर ने कहा कि बागवानी विभाग द्वारा कोल्ड स्टोर, फल पकाने की राईपिंग यूनिट, रेफ्रिजरेटिड वैन व सोलर पैनल लगाने पर 35 फीसदी अनुदान दिया जाता है। किसान 5 हजार एमटी का टाइप-1 कोल्ड स्टोर अधिकतम 5 करोड़ रुपये तक का और टाइप-2 का 5 हजार एमटी का 6 करोड़ रुपये तक का कोल्ड स्टोर लगा सकता है। विभाग ने कोल्ड स्टोर लगाने की राशि अब 4 से बढ़ाकर 5 करोड़ रुपये कर दी है। उन्होंने बताया कि यह जिले का सबसे बड़ा कोल्ड स्टोर होगा और इसके चालू होने पर पानीपत में निश्चित रूप से बागवानी की फसलों को बढ़ावा मिलेगा।

कैसे करें कपास में पोषक प्रबंधन

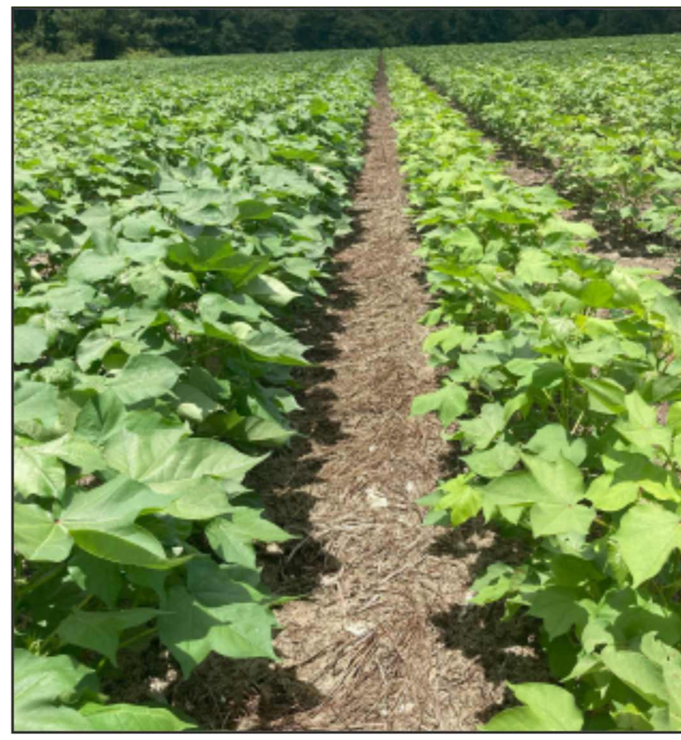

कपास के पौधे प्रति हैक्टेयर 40 किलो ग्राम नत्रजन, 10-15 किलो फॉस्फोरस अम्ल और 45 किलो ग्राम पोटाश भूमि से औसत रूप में निकाल लेने के संकेत है। कपास के सुचारू पोषण का महत्व इस बात से भी प्रतिबिम्बित होता है कि 100 किलो कपास पैदा करने में 7 किलो नत्रजन 2 किलो स्फूर और 8 किलो पोटाश की निम्नतम आवश्यकता होती है। साधारणतया: कपास को दिये जाने वाला उर्वरक पौधों को पूर्णत: उपलब्ध नहीं होता। परिणामस्वरूप नत्रजनीय उर्वरकों का केवल 40 प्रतिशत स्फुर युक्त का 35-40 प्रतिशत और पोटाश केवल 40-60 प्रतिशत ही कपास के पौधे उपयोग में ला सकते हैं।

भूमि की उर्वरा शक्ति को बढ़ाने व संरचना को सुधारने के लिए आवश्यक है कि सेंद्रीय (ऑर्गेनिक) खाद भी पर्याप्त मात्रा में उपयोग किए जावें। ऑर्गेनिक खादों का महत्व यह होता है कि मुख्य तत्वों (नाइट्रोजन, स्फुर, पोटाश) की मात्रा के अलावा उनसे अन्य महत्वपूर्ण पोषक तत्व जैसे तांबा, लोहा, मैग्नीज आदि भी कमावेशी मिल जाते हैं और ये खाद अपनी गुणवत्ता में समतोल रखता है। वर्षा आधारित खेती में कम से कम 10-12 गाड़ी प्रति हैक्टेयर तथा सिंचित खेती में 15-20 गाड़ी प्रति हैक्टेयर गोबर का खाद आवश्यक है।

मध्यम भारी तथा भारी भूमि में नत्रजन की मात्रा का चौथाई भाग तथा स्फुर तथा पोटाश की पूरी मात्रा बोने के समय देना चाहिए, जबकि मध्यम व हल्की जमीन में शुष्क खेती के लिए नत्रजन एक चौथाई आधा स्फुर एवं आधा पोटाश बोने के समय दें।

खड़ी फसल में उर्वरक देने की विधि:- असिंचित वर्षा आश्रित फसल में जो साधारणत: 45-60 सैं.मी. की दूरी पर बोई जाती है, उसमें उर्वरक थोड़ा गहरा फड़क द्वारा कतारों के बीच में नाली द्वारा देना चाहिये, इन परिस्थितियों में खेत नींदा रहित होना चाहिये विपुल उत्पादन जातियों की खड़ी फसलों में प्राय: नत्रजनीय खाद ही दिया जाता है, लेकिन यदि स्फुर तथा पोटाश का भी आधा शेष भाग साथ ही दे दिया जाये तो फसलों की बढ़वार में सहायता मिलती है, शर्त यह है कि खड़ी फसल में दिये जाने वाले इस तरह के उर्वर भूमि में अन्दर जाने चाहिये ताकि वे जड़ों की पहुंच के अन्दर हो। आमतौर पर कपास की जड़ें 50 से 60 दिनों में 100 से 120 सैं.मी. की गहराई तक जाती है, सभी जड़े उर्वरकों ग्रहण को नहीं करती मोटी जड़े तो पौधे के सहारे और पानी व पोषक तत्वों के घोल के परिवहन का काम करती है, साधारण पद्धति याने रिंग पद्धति से उर्वरक देने से भी उतना ही खर्च आता है, जितना कि कालम पद्धति से आता है, इसकी पूरी संभावना है कि इस पद्धति से 20 से 50 प्रतिशत उर्वरक की बचत हो जाती है।

पत्तियों के माध्यम से उर्वरक:- पौधों को उर्वरकों की आवश्यकताओं की पूर्ति में पत्तियों के माध्यम से भी उर्वरकों की पूरक मात्रा दी जा सकती है, छिड़क कर एक सीमा तक ही पौधे को आवश्यक तत्व दिये जा सकते है, इसकी आवश्यकता उस समय होती है, जब पौधे प्राकृतिक रूप से नत्रजन आदि तत्व पर्याप्त मात्रा में ग्रहण नहीं कर पाता, जैसे अधिक वर्षा होने पर या फल फूल बहार कम आने पर। पत्तियों के माध्यम से नत्रजन देने के लिए आवश्यकतानुसार यूरिया के घोल का छिड़काव 1 से 3 बार किया जा सकता है, पहला छिड़काव कली आने पर तथा उसके बाद दूसरा तीसरा छिड़काव 15 से 25 दिनों के अन्तर से किया जा सकता है, पौधे की पत्तियों को यूरिया के घोल से अच्छी तरह से भिगो दें। यदि छिड़काव के पश्चात् वर्षा होने की संभावना हो तो घोल में 1 मिलीलीटर प्रति दो लीटर घोल के मान से कोई चिपकने वाली दवा जैसे सेन्डोबिट, टीपाल या ट्रीइटियान आदि मिलाना न भूले। नत्रजन की तरह ही स्फुर और पोटाश भी पानी के घोल द्वारा छिड़क कर दिये जा सकते है, इस छिड़काव के लिए डायमोनियम फॉस्फेट और म्यूरेट ऑफ पोटाश के 1.5 प्रतिशत घोल की आवश्यकता होती है, अन्य बातों के अलावा इसके उपयोग से कलियों फूलों की बहार में अभिवृद्धि हुई है।

कपास के संतुलित पोषण के लिए केवल नत्रजन स्फुर एवं पोटाश ही पर्याप्त नहीं होते कपास को 16-17 अन्य तत्वों की भी उतनी ही आवश्यकता होती है, जितनी के इन तीन मुख्य तत्वों की। अत: कपास के विकास एवं वृद्धि में इन अल्प तत्वों का विशेष महत्व है, ये तत्व पौधे में रासायनिक क्रियाओं को तेज करने एवं उन्हें नियंत्रण में रखने वाले एन्जाइम्स के घटक है, उदाहरण के लिए मैग्नीशियम पत्तियों के हरितपदार्थ (क्लोरोफिल) का मुख्य घटक है, इसके अलावा कैल्शियम, जिंक, गंधक, लोहा, तांबा, मैग्नीज, बोरोन, मोलीब्डेनम और क्लोरीन का भी विशिष्ठ महत्व है, साधारणतया भूमि में उपलब्ध इन अल्प पोषक तत्वों को जड़े ग्रहण करती है, किन्तु एक सीमा के बाद निश्चित मात्रा में नहीं होने पर पौधों को ये तत्वों की उपलब्धता भूमि के अम्लीय या क्षारीय होने से प्रभावित होती है, क्षारीय भूमि में जस्ते और मैग्नीज की कमी हो जाती है, किन्तु अम्लीय भूमि में इनका अभाव नहीं होता। कैल्शियम-मैग्नीशियम आदि तत्व रिस कर और अधिक वर्षा से घुलकर भूमि में कम होते जाते है और सिलिकिन अल्यूमिनियम और आयरन इकट्ठे होकर भूमि को अम्लीय बनाते है, जिससे अन्य तत्वों की कमी होती है, पी.एच. भूमि के 6.5 से 7.5 के स्तर तक अल्प पोषक तत्व अधिकतर प्राप्त होते हैं, उर्वरकों का भी इस पी.एच. स्तर की भूमियां अच्छा उपयोग करती है। खड़ी फसल में देने के लिए अल्प पोषी तत्वों के मिश्रण बाजार में आसानी से उपलब्ध होते हैं, एक ही सूक्ष्म तत्व के मिश्रण को बार-बार उपयोग नहीं करना चाहिये पहला छिड़काव पूडी आने पर दूसरा फूल आने पर और तीसरा कपास खिलने पर करना चाहिये। साधारणतया भूमि में देने के लिए जस्ते, तांबा, बोरोन, मैग्नीशियम, मैगनीज आदि के किसी भी लवण की 10 से 15 किलो ग्राम प्रति हैक्टेयर मात्रा की आवश्यकता होती है। लोहे की आवश्यकता 25 किलो ग्राम प्रति हैक्टेयर लोग लवण से पूरी हो जाती है। मोलीब्डेनम के लिए केवल आधा किलोग्राम प्रति हैक्टेयर मालिब्डोनिक एसिड पर्याप्त होती है।

खेती संदेश

KHETI SANDESH

मुख्य कार्यालय :
9–ए, अजीत नगर,
पटियाला–147001
(पंजाब)
मो. 98151–04575

कार्पोरेट कार्यालय :
के.डी. कॉम्पलैक्स, गऊशाला रोड,
नजदीक शेरे पंजाब मार्केट,
पटियाला–147001
(पंजाब)
मो. 90410–14575

वर्ष : 01 अंक : 01
तिथि : 14-07-2025

सम्पादक
परमिंदर कौर

सम्पादकीय बोर्ड
डॉ. डी.डी. नारंग
डॉ. जे.एस. डाल
डॉ. आर.एम. फुलझेले

Editor : **PARMINDER KAUR**
Printer, Publisher and Owner of Weekly
'KHETI SANDESH' Printed at **Drishti Printers,**
Dasmesh Market, Near Sher-e-Punjab Market,
Gaushala Road, Patiala-147001 (Pb.) and
published from **Kheti Sandesh**, House No. 9-A, Ajit Nagar,
Patiala-147001 (Pb.). E-mail : khetisandesh2025@gmail.com
Mob. 90410-14575, RNI No.**PBBIL/25/A0210**

कृषि के फसल उत्पादन में नैनो तकनीक की भूमिका

डॉली रानी और दीक्षा, चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार
डॉ. रघुबीर सिंह, खण्ड कृषि अधिकारी बरवाला, कृषि एवं किसान कल्याण विभाग, पंचकूला (हरियाणा)

आधुनिक परिदृश्यों में, कृषि क्षेत्र में व्यापक चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है, जिसमें अपत्याशित जलवायु परिवर्तन, उर्वरकों और कीटनाशकों जैसे कई विनाशकारी पर्यावरणीय प्रदूषकों के साथ मिट्टी का दूषित होना और बढ़ती वैश्विक आबादी के साथ प्रमुख रूप से बढ़ती खाद्य मांग शामिल है। नैनोमैटेरियल्स कृषि प्रौद्योगिकी में उन्नति में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। तकनीकी नवाचारों की नवीनतम पंक्ति में, नैनो प्रौद्योगिकी कृषि और खाद्य उत्पादन को बदलने में एक प्रमुख स्थान रखती है।

कृषि विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी के रूप में कार्य करती है। आधुनिक परिदृश्यों में, कृषि क्षेत्र में व्यापक चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है, जिसमें अपत्याशित जलवायु परिवर्तन, उर्वरकों और कीटनाशकों जैसे कई विनाशकारी पर्यावरणीय प्रदूषकों के साथ मिट्टी का दूषित होना और बढ़ती वैश्विक आबादी के साथ प्रमुख रूप से बढ़ती खाद्य मांग शामिल है। नैनोमैटेरियल्स कृषि प्रौद्योगिकी में उन्नति में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। तकनीकी नवाचारों की नवीनतम पंक्ति में, नैनो प्रौद्योगिकी कृषि और खाद्य उत्पादन को बदलने में एक प्रमुख स्थान रखती है।

नैनो मटेरियल्स वे सामग्री है, जिनकी आकार सीमा 100 न.म. से कम होती है, उनके पास उच्च सतह से आयतन अनुपात है। नैनो मटेरियल्स में अद्वितीय भौतिक–रासायनिक लक्षण होते हैं। जैसे छोटा सतह क्षेत्र, असामान्य सतह संरचना, रासायनिक संरचना, स्थिरता, आकार, उनका समूह और उनके छोटे आकार के कारण लक्षित स्थलों तक बेहतर परिवहना इसके अलावा, इन अनूठी विशेषताओं के कारण, विभिन्न सतहों और सामग्रियों के संयोजन में नैनो मटेरियल्स का आसानी से उपयोग किया जा सकता है और इस प्रकार उन्नत फसल उत्पादन के लिए कृषि क्षेत्र में व्यापक अनुप्रयोगों के साथ बहुमुखी प्लेटफॉर्म के रूप में कार्य किया जा सकता है। नैनो टैक्नोलॉजी ने कृषि को विभिन्न तरीकों से लाभान्वित किया – मिट्टी और उर्वरक वितरण की गुणवत्ता में सुधार करने के लिए, पौधों की बीमारियों को नियंत्रित करने के लिए (बायोकंट्रोल एजेंट), लवणता, सूखा, नमी और ठंड

जैसे पौधों की तनाव सहनशीलता में सुधार, कृषि रसायनों की सटीक रिलीज और लक्षित आपूर्ति की सुविधा प्रदान करना।

जैव नियंत्रण एजेंटों के रूप में नैनो प्रौद्योगिकी

विश्व स्तर पर हर साल पौधों के कीटों और रोगजनकों के कारण लगभग 20–40 प्रतिशत फसलों का विनाश होता है। आधुनिक कृषि पद्धतियों में, कीट प्रबंधन प्रथाएं कीटनाशकों, जैसे कि कीटनाशकों, कवकनाशी और शाकनाशियों के उपयोग पर बहुत अधिक निर्भर करती हैं। इसलिए इन सीमाओं का मुकाबला करने के लिए लागत प्रभावी, उच्च प्रदर्शन करने वाले कीटनाशकों के विकास की आवश्यकता है, जो पर्यावरण के लिए कम हानिकारक है। नैनोटैक्नोलॉजी पर्यावरण के अनुकूल और लागत प्रभावी दृष्टिकोण है, जिसमें कीटनाशकों के अतिरिक्त लाभ हैं, जैसे विषाक्तता को कम करना, शेल्फ–लाइफ में सुधार करना और खराब पानी में घुलनशील

कीटनाशकों की घुलनशीलता को बढ़ाना। ये नैनो–आकार की सामग्री नियंत्रित तरीके से पोषक तत्वों और रसायनों के वितरण की अनुमति देती है। कीटों और मेजबान रोगजनकों के नियंत्रण में नैनोकणों की भी महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। विभिन्न प्रकार के पॉलीसेकेराइड जैसे नैनो–कीटनाशकों के उत्पादन के लिए उपयोग किए

जाए सकते हैं, जैसे कि चिटोसन, एल्गिनेट्स, स्टार्च और पॉलीएस्टर। नैनो–कीटनाशक या तो सीधे पौधों की रक्षा करते हैं या मौजूदा कीटनाशकों के वाहक के रूप में कार्य कर सकते हैं और उनका छिड़काव किया जा सकता है।

उर्वरक और जैव उर्वरक के रूप में नैनो तकनीक

कृषि पद्धतियों की अधिकांश उत्पादकता फसल उत्पादकता और मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने के लिए उर्वरकों के उपयोग पर बहुत अधिक निर्भर है। फसल उत्पादन बढ़ाने के लिए नैनो उर्वरक का उपयोग महत्वपूर्ण है। नैनो उर्वरक वितरण में सुधार करता है और अत्याधिक नियंत्रित तरीके से धीरे–धीरे मिट्टी में पोषक तत्वों की धीमी रिहाई को प्रबंधित करता है, जिसके परिणामस्वरूप यह पानी के यूट्रोफिकेशन और संदूषण को रोकता है। नैनो–कण अकेले नैनो–उर्वरक पी.जी.पी.आर. (राइजोबैक्टीरिया को बढ़ावा देने वाले पौधे की वृद्धि) के साथ नैनोकणों से बना है। नैनो–बायोफर्टिलाइज़र में पी.जी.पी.आर. नाइट्रोजन – फिक्सेशन, फॉस्फेट – सॉल्युबिलाइजिंग में मदद करता है और मिट्टी की उर्वरता को बहाल करने में मदद करता है, जबकि नैनोमैटेरियल्स फसल की मांग के अनुसार पोषक तत्वों को एक सिंक्रनाइज़ मोड में धीमी और स्थिर रिलीज में मदद करते हैं।

भविष्य की चुनौतियां

कृषि की दृष्टि से महत्वपूर्ण नैनो– मटेरियल्स के उत्पादन में बहुत सारे शोध किए जा रहे हैं। इन सामग्रियों का मूल्यांकन उनके अनुप्रयोगों के लिए कृषि–रसायन, सुरक्षा मूल्यांकन, उत्पादन लागत, मूल्यांकन मानकों, पंजीकरण नीतियों और सार्वजनिक चिंता के मुद्दों के रूप में किया जाता है। सार्वजनिक उपयोग के लिए, क्षेत्र में उनके सुरक्षित अनुप्रयोग से पहले नैनोकणों के प्रभाव के पूर्ण मूल्यांकन की आवश्यकता है।

धान के पैदा होने वाले खरपतवारों को कैसे खत्म करें?

धान हरियाणा व पंजाब में खरीफ की एक महत्वपूर्ण फसल है। धान से मुनाफे वाले उत्पादन के लिए किसानों को कई मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। इनमें खरपतवारों की सही रोकथाम एक बेहद अहम समस्या है। खरपतवारों की आस्तित्व से धान का उत्पादन 25 से 50 प्रतिशत तक कम हो जाता है। धान के खेतों में आम खरपतवारों के अतिरिक्त कुछ नए उभरते खरपतवारों की समस्या पहले से बढ़ रही है और इन्हें काबू में रखने के लिए खास ख्याल रखने की जरूरत है। धान की फसल में दो तरह के खरपतवार होते है :-

1. घास वाले खरपतवार :- इन में मुख्य हैं सवांक, छोटी सुवांक या सुवांकी, कनकी, धान के मौथे जैसे धरतीवाला मौथा या गांठों वाला मौथा, घास, नड़ी, जापानी बूटी आदि।

2. चौड़ी पत्ती वाले

खरपतवार :- घरिला, सणी और कई तरह की बूटियां धान के कई खरपतवारों में सवांक अधिक खतरनाक खरपतवार है, जोकि सारे पंजाब में पाया जाता है। इसके अलावा एक घास वाला खरपतवार लैप्टोक्लोआ है जोकि जालंधर, लुधियाना और संगरूर के कुछ हिस्सों में समस्या बन रही है। चौड़े पत्ते वाले खरपतवार मिर्च बूटी भी काफी बढ़ रही है। गुरदासपुर, कपूरथला एवं होशियारपुर जिलों में चौड़ी पत्ती वाला एक और खरपतवार जंतरी भी धान के खेतों में होता है।

सारणी नं: 1 धान की फसल में पैदा हुए खरपतवारों के खात्मे के लिए सिफारिश की गई खरपतवारनाशक दवाईयां

खरपतवारनाशक दवाईयों के नाम	मात्रा	छिड़काव का समय
नोमनी गोल्ड 10 एस.सी. (बिस्पाईरीबैक)	100 मि.ली.	बुवाई करने के 20-25 दिन बाद
बैडों में लगे धान में खरपतवारों की रोकथाम		
नोमनी गोल्ड 10 एस.सी. (बिस्पाईरीबैक)	120 मि.ली.	बुवाई करने के 20-25 दिन बाद
चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों की रोकथाम		
आलग्रिप 20 डब्ल्यू.पी. (मैटासल्फुरान)	30 ग्राम	बुवाई करने के 20-25 दिन बाद
सनराइज 15 डब्ल्यू.डी.जी. (इथेक्सीसल्फुरान)	50 ग्राम	बुवाई करने के 15-20 दिन बाद
सैगमैंट 50 डी.एफ. (अजिमसल्फुरान)	16 ग्राम	बुवाई करने के 15-20 दिन बाद

धान के खरपतवारों को काबू में रखने के लिए कई तरह की खरपतवारनाशक दवाईयों की सिफारिश की गई है। जिनको खड़े पानी में पौध लगाने के 2-3 दिन के अंदर रेत में मिलाके एकसार छिट्टा देना चाहिए। यह खरपतवारनाशक दवाईयां खरपतवारों के पैदा होने से पहले ही खत्म कर दिए जाते हैं, परन्तु कई किसान भाई या तो इन दवाईयों का प्रयोग ही नहीं करते या फिर इनके प्रयोग के समय काफी लाप्रवाही भी कर जाते हैं। धान की फसल में खरपतवारों के पैदा होने के मुख्य: कारण इस प्रकार से है:-

1. कई किसान खरपतवारों से संबंधित दवाईयों का कम मात्रा में प्रयोग करते है। जैसेकि बूटाक्लोर दवाई की सिफारिश की गई मात्रा 1200 मिलीलीटर प्रति एकड़ है, मगर किसान इस की 1 लीटर मात्रा ही प्रयोग करते हैं, इससे सभी खरपतवार नहीं मरते।

* खरपतवारों के लिए तरल दवाईयों को 60 किलो रेत में मिलाकर छिट्टा देने की सिफारिश की गई है, मगर किसान इस काम को मुश्किल समझते है और बेहद कम रेत का प्रयोग करते हैं। कुछ किसान तो दवाई को खाद में मिलाकर छिट्टा देते हैं। इस तरह से दवाई एक समान खेत में नहीं पड़ती एवं खरपतवारों पर असर कम होता है।

* दवाई डालने का सबसे ठीक समय धान की बुवाई से 2-3 दिन के भीतर का है। जबकि किसान भाई इसका प्रयोग बुवाई से 10 दिन बाद तक करते रहते हैं। यह दवाई खरपतवार पैदा होने से पहले असर करती हैं, अगर खरपतवार पैदा हो जाएं तो इनका प्रभाव तो होता ही है।

* कई बार कद्दू करने और धान लगाने तक काफी समय या फर्क रहता है एवं फिर जब दवाई धान लगाने के 2-3 बाद प्रयोग की जाती है तो उस समय तक काफी खरपतवार खेत में पैदा हो जाते हैं जिनके उपर दवाई का असर नहीं होता।

* दवाई डालते समय यदि खेत में पानी न खड़ा हो तो भी खरपतवारनाशक दवाई का असर कम हो जाता है। धान की फसल में लगातार कुछ समय के लिए पानी खड़ा रखनी भी एक तरह से खरपतवारों को काबू में रखने की पुरानी विधि है। परन्तु कई बार पानी की कमी के कारण सूखा पड़ने पर खरपतवार खेत में पैदा हो जाते हैं।

* लगातार एक ही दवाई के प्रयोग से कुछ नए खरपतवार जैसे कि कनकी एवं चौड़े पत्तों वाले खरपतवार आने लगते हैं जैसेकि बूटाक्लोर और प्रैटीलाक्लोर किस्म की दवाई या कनकी का कम ही खात्मा करती हैं। जबकि अनीलोफास कनकी को काबू में रखती हैं, परन्तु छत्तरीवाला मौथा को खत्म नहीं करती है।

* कई किसान भाई पौध में खरपतवारों की रोकथाम के लिए खरपतवारों की रोकथाम सही ढंग से नहीं करते जिससे पौध में खरपतवार पैदा हो जाते है। सवांक और सवांकी जोकि धान के मुख्य: खरपतवार हैं। छोटी अवस्था में बिल्कुल धान के पौधों की तरह ही खरपतवार नजर आते हैं और प्रवासी मजदूर इन को पौध के साथ ही उखाड़के खेत में लगा देते है और बड़े होने पर खरपतवारों को काबू करना मुश्किल हो जाता है।

धान में पैदा हुए खरपतवारों की रोकथाम निम्नलिखित ढंग से की जा सकती है:-

1. गुड़ाई करने से अगेती और समय पर कतारों में बोई गई धान की फसल की दो गुड़ाई पौध लगाने के बाद पैडीवीडर से करें। जहां पर पैडीवीडर न चल सकता हो वहां पर खरपतवार हाथ से उखाड़ें। किसान पुरातन समय से धान के खरपतवारों को गुड़ाई करके या हाथों से उखाड़ते रहे हैं, परन्तु खरपतवारों को खत्म करने का यह तरीका काफी मेहनत वाला है और लाभकारी भी होता है। गुड़ाई करने वाले

शेष पृष्ठ 8 पर

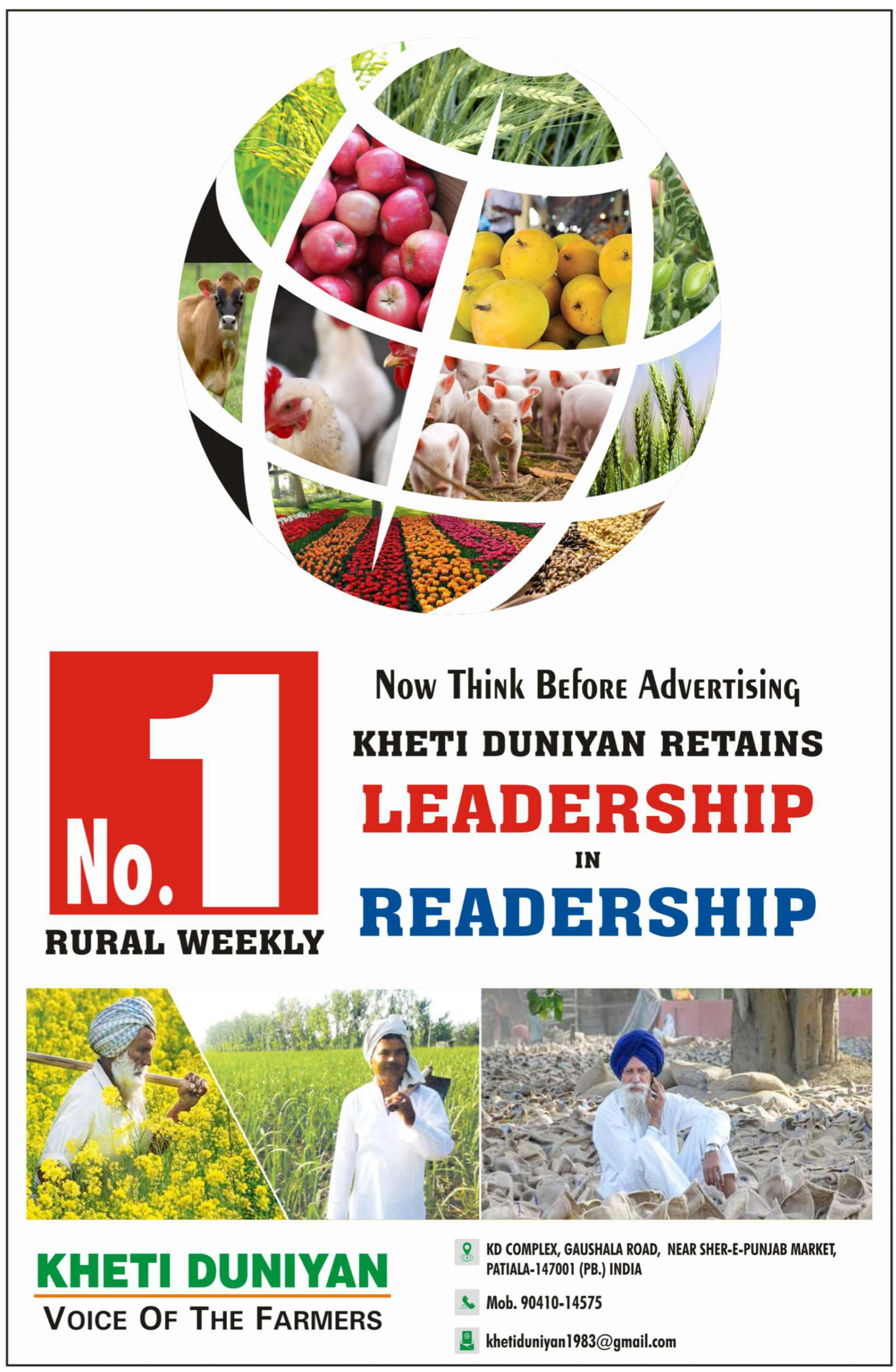

दुधारू पशुओं के लिए उचित आवास व्यवस्था

किसी सूझवान व्यक्ति ने कहा है कि भारत की आत्मा गांवों में बसती है, क्योंकि देश की 70 प्रतिशत जनता तो गांवों में रहती है। हर दूसरे-तीसरे घर में दुधारू पशु पाए जाते हैं। दुधारू पशु पशुपालक के घर के दूध की मांग को पूरा करने के साथ-साथ आय का भी एक साधन है। दुधारू पशुओं (डेयरी फार्मिंग) का देश की आर्थिक उन्नति में भी काफी योगदान है। हर एक पशु पालक भाई का यह लक्ष्य होता है कि उसे डेयरी से अधिक से अधिक मुनाफा हो। डेयरी फार्म की सफलता अच्छी नस्ल के पशुओं, बढ़िया खुराक तथा अच्छे प्रबंध के साथ-साथ उचित आवास व्यवस्था पर भी निर्भर करती है। जैसे मनुष्य के लिए रोटी, कपड़ा तथा मकान बुनियादी जरूरते हैं, उसी तरह पशुओं की बुनियादी जरूरतों में अच्छी खुराक तथा उचित आवास व्यवस्था है।

प्राय: पशु पालक पशु के पोषण एवं प्रजनन पर तो पूरा ध्यान देता है परन्तु आवास व्यवस्था ऐसा क्षेत्र है, जिसे आमतौर पर नजर अंदाज कर दिया जाता है। अगर आवास व्यवस्था उचित न हो, तो पशुओं पर फालतू का बोझ पड़ता है, जिससे पशुओं का दुग्ध उत्पादन कम हो जाता है तथा पशु कई तरह की बीमारियों के शिकार हो सकते हैं। हमारे देश में वैसे तो आवास व्यवस्था (शैडो) की आवश्यता तो केवल 4-5 महीने ही पड़ती है। बाकी समय तो पशु बिना शैडो के भी रह सकते हैं। शैडो का सस्ते, हवादार, आरामदायक, साफ-सुथरे तथा खुले होना अत्यन्त आवश्यक है, जिससे पशुओं का अत्यन्त गर्मी, सर्दी, बारिश तथा आंधी से बचाव हो सके।

गहराई से सोचने पर पता चलता है कि आवास व्यवस्था पर तो केवल एक बार (स्थाई खर्चा) ही खर्चा करना होता है, तो क्यों न वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपना कर ही शैड बनाए जाए, जिससे डेयरी व्यवसाय से अधिक से अधिक मुनाफा हो सके। मोटे तौर पर उस पशु आवास व्यवस्था को उचित मानना चाहिए, जिसमें खड़े होकर खुद पशु पालक आराम महससू करें। अगर पशु आवास व्यवस्था में पशु पालक आरामपूर्वक कुछ देर के लिए नहीं खड़े हो सकते, तो वैसी आवास व्यवस्था पशुओं के लिए ठीक नहीं है।

आवास व्यवस्था कैसी हो?

आवास प्रबंध में निम्नलिखित पहलुओं का ध्यान रखना आवश्यक है।

1. पशुशाला के नजदीक कोई फैक्ट्री/कारखाना नहीं होना चाहिए। पशुशाला के निकट पेड़ लगाने चाहिए। इससे वातावरण साफ-सुथारा रहेगा एवं गर्मियों में पशु छाया व ठण्डी हवा का आनन्द ले सकेंगे।

2. पशुशाला हमेशा पशुओं के लिए आरामदायक होनी चाहिए तथा इसमें उचित पोषण व्यवस्था होनी चाहिए।

3. आवास निर्माण की सामग्री आसानी से उपलब्ध हो ताकि पशुशाला कम लागत में बन सके तथा आवास व्यवस्था का रख-रखाव भी खर्चीला न हो।

4. पशुशाला का लंबा धुरा पूर्व से पश्चिम की तरफ होना चाहिए। इससे पशुशाला में सर्दियों को धूप अंदर आ जाएगी तथा गर्मियों को अधिक धूप बाहर ही रहेगी।

5. पशुशाला में हवा तथा रोशनी का समुचित प्रबंध होना चाहिए तथा पशुओं की देखभाल में श्रम-लागत कम आनी चाहिए।

6. पशुशाला बड़ी सड़क से 100-200 गज की दूरी पर होनी चाहिए। इससे खलिहानों से हरा चारा लाते समय तथा पशुशाला से मंडी को दूध ले जाते समय कोई रूकावट नहीं होगी।

7. पशुशाला की बनावट इस प्रकार की हो कि भविष्य में अगर पशुओं की गिनती बढ़ानी हो तथा पशुशाला का विस्तार करना हो, तो कोई मुश्किल न हो

8. पशुशाला हमेशा आस-पास की जमीन से 2-3 फुट ऊंची होनी चाहिए। इससे पानी/मल मूत्र का निकास ठीक तरह से हो सकेगा तथा पशुओं को ताजी हवा मिलेगी।

9. पशुशाला हमेशा ऐसी जगह पर होनी चाहिए जहां पर स्वच्छ पानी उपलब्ध हो, दुग्ध संग्रह केन्द्र पास हो, उस क्षेत्र में आवाजाही/यातायात आसान हो तथा आस पास के क्षेत्र में बाढ आदि का अंदेशा न हो।

10. पशुशाला में पशुओं के चलने/उठने/ बैठने के लिए उपयुक्त जगह होनी आवश्यक है। पशुशाला गर्मियों में कम गर्म तथा सर्दियों में कम ठंडी होनी चाहिए। सारांश में पशुशाला ऐसी हो कि पशु मानसिक तनाव से मुक्त रहें।

आवास व्यवस्था के विभिन्न पहलू :- पशुशाला के निर्माण हेतु कुल क्षेत्र पशुओं की संख्या, आयु एवं अवस्था पर निर्भर करता है। सभी पशु आयु एवं अवस्था के आधार पर एक साथ रखे जाते हैं। दुधारू पशुओं को दुहते समय ही अलग दुग्धशाला में बांध कर दुहा जाता है। पशुघर का एक तिहाई हिस्सा ऊपर से छत द्वारा ढका जाता है। चारे व दाने के लिए लंबी नांद (खुरली) तथा पानी के लिए हौद की व्यवस्था रखी जाती है।

(क) दीवारें तथा छत :- पशुघर की मुख्य दीवार जिस पर छत बनानी हो, कम से कम 10 से 12 फुट ऊंची होनी चाहिए। ऐसा करने से हवा का निकास अच्छी तरह से हो सकेगा। ईट तथा सीमेंट की दीवारें बना कर, उन पर पलस्तर भी करवा लेना चाहिए। इससे दीवारें मजबूत रहेंगी तथा पशुशाला की सफाई भी आराम से हो सकेगी। हर 10 फुट दीवार के पीछे दरवाजे के ईलावा एक खिड़की (3'×4½') और रौशनदान (2'×2') होना चाहिए। इससे पशुशाला में से कार्बन डाईआक्साइड, अमोनिया तथा मीथैन जैसी गैसों का पूर्ण रूप से निकास हो सकेगा। अन्यथा ऐसा न करने से पशुशाला में से बदबू आती रहेगी।

पशुशाला की छत बनाने के लिए ईंट, बाले या लैटर का इस्तेमाल किया जाना चाहिए। लोहे का ऐल्यूमीनियम की छत का प्रयोग नहीं करना चाहिए, क्योंकि ऐसी छतें गर्मियों में अधिक गर्म तथा सर्दियों में अधिक ठंडी हो जाती हैं। कई बार गांवों में घास-फूस की छत का प्रयोग किया जाता है। घास-फूस की छत गर्मियों में तो काफी ठंडी रहती है, पर बरसातों में ऐसी छतों में से पानी टपकने लगता है तथा घास-फूस की छतों वाली पशुशाला में चिचड़ों की समस्या अधिक आती है। चिचड़, पशुओं का खून पीने के साथ-साथ कई बीमारियां फैलाने के कारण भी हैं।

(ख) खुरली :- खुरली की अगली तथा पिछली दीवार की ऊंचाई क्रमश: ढाई फीट तथा चार फीट होनी चाहिए। खुरली की चौड़ाई ढाई से तीन फीट होनी चाहिए। खुरली की गहराई डेढ फीट होनी चाहिए। छोटे बछड़ों के लिए यह पैमाना कम रखा जा सकता है। पशुओं को चारा व दाना खाते समय रगड़ से बचाने के लिए खुरली का तल गोलाई में तथा चिकना रखा जाना आवश्यक है। ध्यान रखें कि खुरली में कोई भी दरार न रहे, पलस्तर अच्छी तरह से हो। खुरली में दरार रहने की वजह से कई बार हरा चारा उन में फंस कर रह जाता है तथा ऐसे हरे चारे पर फफूंदी (ऊल्ली) लग जाने से, पशुओं को कई प्रकार की बीमारियां हो सकती हैं। खुरली हमेशा उत्तर दिशा की तरफ बनानी चाहिए।

(ग) फर्श :- खुरली के साथ ही दक्षिण दिशा में पशु को खड़े होने के लिए जगह की जरूरत पड़ती है। एक व्यस्क पशु के लिए 6 फीट लंबी तथा 4 फीट चौड़ी जगह की आवश्यकता है। फर्श सीमेंट या कंकरीट का पक्का बनाया जा सकता है तथा इसे छत से ढके हुए भाग तक ले जाना चाहिए। अगर ईंटों का फर्श बनाना हो तो हमेशा खड़ी ईंट का फर्श ही बनाएं। बैठी हुई ईंट के फर्श के ऊपर पर जब पशु का खुर पड़ता है तो ईंट नीचे बैठ जाती है, जिससे दो ईंटों के बीच में जगह बन जाती है तथा ऐसे फर्श पर पशुओं में थनैला रोग तथा खुरों के रोगों का अधिक खतरा रहता है। हमेशा याद रखें कि फर्श फिसलन (तिलकन) वाला न हो, बल्कि पशुओं को फिसलने से बचाने के लिए फर्श की ऊपरी सतह खुरदरी होनी चाहिए। फर्श पर खुरली से निकास नाली की ढलान 2.5 सैंटीमीटर प्रति मीटर की दे, जिससे कि मलमूत्र न रूके। पक्के फर्श के बाद 1.5 फीट चौड़ी तथा 2 ईंच गहरी निकास नाली बनानी चाहिए। नाली के कोनों को सीमेंट से गोल करना चाहिए तथा नाली में हर 20 फीट के पश्चात् 2 ईंच की ढलान दें। निकास नाली के साथ लगभग एक मीटर जगह पक्की होनी चाहिए, जिससे कि सफाई तथा देखभाल में आसानी हो सके।

ध्यान देने योग्य अन्य बातें :-

1. 8 सप्ताह से कम बछड़े/बछड़ियों के लिए फर्श हेतु ढका क्षेत्र तथा खुला क्षेत्र क्रमश: 1.0 तथा 2.0 वर्ग मीटर चाहिए। इनको 5 कि समूह में रखा जा सकता है।

2. 8 सप्ताह से अधिक आयु वाले बछड़े/बछड़ियों के लिए फर्श हेतु ढका क्षेत्र तथा खुला क्षेत्र क्रमश: 2.0 तथा 4.0 वर्गमीटर चाहिए। इन्हें 10-15 तक के समूह में रखा जा सकता है।

3. व्यस्क पशु को 25 तक के समूह में रखा जा सकता है पर ब्याहने से 15 दिन पहले गाभिन पशु को अकेले रखना चाहिए।

4. पशुओं के समूह हमेशा उत्पादकता के आधार पर बनाएं न कि ब्यांत की अवस्था के आधार पर तथा अधिक दुग्ध उत्पादन वाले पशु की तरफ अधिक ध्यान दें।

5. खुले क्षेत्र का कुछ भाग कच्चा भी रखना चाहिए। पानी की हौद कच्ची जगह पर बनाई जा सकती है। एक व्यस्क पशु को पानी हेतु 60-75 सैं.मी. क्षेत्र चाहिए।

6. पशुशाला के हर प्रवेश बिन्दु पर पैर धोने की व्यवस्था होनी चाहिए।

7. समस्त पशु आवास को समय-समय पर कीटाणुरहित करते रहना चाहिए ताकि पशुओं को बीमारियों से बचाया जा सके।

पशुशाला को दिन में एक बार पशुओं से खाली कर देना चाहिए, जिससे फर्श की सफाई अच्छी तरह से हो सके। पशुशाला की दीवारों की सफाई की तरफ भी पूरा ध्यान देना चाहिए, जिससे कि छतों पर जाले न लगें। रोगी पशु को स्वस्थ पशुओं से अलग करने के साथ-साथ रोगी पशु के मल-मूत्र की निकासी भी उचित ढंग से करें तथा पशुशाला को फिनाईल से धो दें, जिससे बीमारी पैदा करने वाले कीटाणु खत्म हो सकें।

आशा है कि पशु पालक भाई, वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाते हुए डेयरी के अभिन्न हिस्से-पशुशाला की तरफ भी पूरा ध्यान देंगे तथा डेयरी से अधिक मुनाफा कमा कर प्रफुल्लित हो सकेंगे।

"पोषक तत्वों से भरपूर आनार का फल शरीर को रोगों से लड़ने के लिए प्रतिरोधक क्षमता प्रदान करता है। इसके जूस में कार्बोहाईड्रट, शुगर, रेशा, वसा, प्रोटीन, विटामिन और खनिज तत्व पाये जाते हैं। आनार के दानों से जैली और आनार रस बनाया जाता है। इससे बना शर्बत स्वास्थ्य के लिए लाभदायक होता है। दवा बनाने में भी छिलके का प्रयोग होता है। आनार का प्रयोग प्राकृतिक रंग और कपड़ों की रंगाई में भी करते हैं। इसके लाल फूल दिखने में सुंदर होते हैं। यदि वैज्ञानिक ढंग से इसकी बागवानी की जाये तो इससे काफी मुनाफा मिलता है। आनार में अनेक प्रकार के कीड़े और रोग लगते हैं, जिनकी वजह से फसल को काफी नुक्सान होता है। यदि समय रहते इनकी रोकथाम की जाये उत्पादन अच्छा है।"

आनार की आधुनिक खेती

प्रशांत कुमार, तपन कुमार सिंह और उदय शंकर बोस, अखिल भारतीय फल अनुसंधान केन्द्र, कुठुलिया, कृषि महाविद्यालय, रीवा, जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर (मध्य प्रदेश)

आनार, उपोष्ण जलवायु का एक प्रमुख फल है। यह प्यूनिकेसी कुल का सदस्य है। आनार का उत्पत्ति स्थान ईरान है, फिर भी विश्व के बहुतायत देशों जैसे-भारत, मिसर, ईरान, मोरक्को, स्पेन एवं अफगानिस्तान में इसकी खेती की जाती है। इसकी खेती भारत में सामान्यत: महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, तमिलनाडु, राजस्थान, कर्नाटक और गुजरात में की जाती है।

महत्व :- आनार एक व्यापक महत्व का फल है। आनार के फल में काफी पोषक तत्व पाये जाते है। यह हमारे स्वास्थ्य के लिए आवश्यक तत्वों को प्रदान कर, हमारे शरीर को विभिन्न प्रकार के रोगों से लड़ने के लिए प्रतिरोधक क्षमता प्रदान करने वाला फल है। इसके रस में नमीं की मात्रा 78 प्रतिशत, प्रोटीन 1.6 प्रतिशत, वसा

0.1 प्रतिशत, खनिज लवण 0.7 प्रतिशत, रेशा 5.1 प्रतिशत, कार्बोहाइड्रेट 14.5 प्रतिशत एवं कैलोरी की मात्रा 65 प्रतिशत होती है। इसके अतिरिक्त आनार में फॉस्फोरस 70 मि.ग्रा. पोटाश 133 मि.ग्रा. कैल्शियम 10 मि.ग्रा. मैग्नीशियम 44 मि.ग्रा., लोहा 1. 79 मि.ग्रा., सोडियम 0.9 मि.ग्रा. कॉपर 0.34 मि.ग्रा. थायमीन 0. 06 मि.ग्रा. राईबोफ्लेविन 0.1 मि. ग्रा., नियासीन 0.3 मि.ग्रा. तथा विटामिन-सी, 16 मि.ग्रा. प्रति 100 ग्राम खाने योग्य भाग में पाया जाता है। इसके फलों का उपयोग शर्बत बनाने में किया जाता है, जो बहुत स्फूर्तिदायक एवं स्वास्थ्य के लिए लाभदायक होता है। इससे जैली एवं आनार रस भी बनाया जाता है। इसके छिलके का उपयोग विभिन्न प्रकार की दवाओं को बनाने में किया जाता है। आनार का उपयोग प्राकृतिक रंग प्राप्त करने के लिए तथा कपड़ों की रंगाई में भी करते है। फलों की छाल से प्राप्त एल्केनाईड को पाईरागईन दवा बनाने में उपयोग करते है। इसके फल में फॉस्फोरस, लोहा तथा विटामिन-सी अधिक मात्रा में पाया जाता है। आनार की जंगली किस्मों के फलों के बीजों का प्रयोग मसाले के रुप में किया जाता है। आनार के सुंदर लाल फूलों का प्रयोग अलंकृत पौधों के रूप में किया जाता है।

जलवायु :- आनार उपोष्ण जलवायु का पौधा है। इसकी खेती के लिए शीत ऋतु में गर्म एवं शुष्क वातावरण आधि लाभदायक होता है। आनार के पौधे पाले के लिए सहनशील होते हैं। इसमें फल पकते समय गर्म तथा शुष्क जलवायु होने पर फलों में मिठास बढ़ जाती है तथा फल की गुणवत्ता अच्छी होती है। सामान्य: आनार की अच्छी खेती के लिए 25-30^0 सेल्सियस तापमान एवं 500-800 मि.मी. वार्षिक वर्षा सर्वोत्तम है। जब तापमान 11^0 सेल्सिय या इससे कम अधिक समय तक बना रहता है तो इसका पौधा बुरी तहर से प्रभावित होता है।

मिट्टी :- आनार की खेती हम विभिन्न प्रकार की मिट्टी में आसानी से कर सकते हैं, परंतु अच्छी जल निकास वाली भारी दोमट मिट्टी जिसका पी-एच मान 7.5 हो, आनार की खेती के लिए सर्वोत्तम होती है। इसकी खेती सामान्य से लेकर क्षारीय मिट्टी में भी सफलतापूर्वक की जा सकती है।

प्रसारण :- सामान्यत: आनार का प्रसारण बीज के द्वारा किया जाता है, परंतु इस विधि में मातृ पौधे के जैसा उत्पादन व फलों की गुणवत्ता प्राप्त करना संभव नहीं होता है। अच्छे गुणों वाले फल प्राप्त करने क लिए आनार में वानस्पतिक विधि से प्रसारण करना चाहिए। इसमें व्यावसायिक वानस्पतिक प्रसारण के लिए सख्त तना कलम विधि का प्रयोग किया जाता है। कलम को लगाने का सर्वोत्तम समय वर्षा अथवा बसंत ऋतु होता है। इस ऋतु में कलम (कटिंग) से जड़ें अधिक निकलती हैं एवं शाखाएं भी अच्छी आती हैं। वर्षा ऋतु में लगभग 6-8 माह पुरानी आनार की शाखा का चुनाव करते हैं। शाखा की लंबाई लगभग 15 से 20 सैं.मी. रखते हैं। इस कर्तन को सर्वप्रथम नर्सरी में लगाते हैं। जब नर्सरी में कलम वाली शाखा से जड़ें निकल जाये एवं पौधे का अच्छा विकास हो जाने के बाद लगभग एक वर्ष पुराने पौधे को बगीचे में लगाते हैं।

पौध की रोपाई एवं दूरी :- आनार के पौधों की रोपाई के 10 से 15 दिन पूर्व 60×60×60 सैं.मी. आकार के गड्ढे तैयार करने चाहिए। ये गड्ढे मौनसून आने के पहले या ग्रीष्म ऋतु में तैयार किये जाते हैं। सामान्यत: इससे आनार के पौधो को 5×5 मीटर या 4×4 मीटर की दूरी पर लगाना सर्वोत्तम माना जाता है। आनार में अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए संघन खेती के तहत 2.5×2.5 मीटर की दूरी बहुत उपयोगी सिद्ध होती है। आनार के पौधों की रोपाई उत्तरी भारत में बसंत ऋतु में एवं दक्षिणी व पश्चिमी भारत में वर्षा ऋतु में की जाती है। सामान्य: वर्षा ऋतु में पौधों की रोपाई सर्वोत्तम मानी जाती है। गड्ढों की भराई से पूर्व ऊपर की मिट्टी में 15-20 कि.ग्रा. सड़ी हुई गोबर की खाद को अच्छी प्रकार से मिला लेते हैं। साथ ही एक कि.ग्रा. सिंगल सुपर फॉस्फेट और 500 ग्राम नीम की खली मिलाकर पौध की रोपाई करके तुरंत सिंचाई कर देनी चाहिए।

कटाई एवं छंटाई :- आनार के पौधे का विकास झाड़ी जैसा होता है। ऐसी स्थिति में पौधे को अच्छा आकार देने तथा अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए पौधे में कटाई-छंटाई का विशेष महत्व होता है। इसमें 4-5 मुख्य शाखाओं को छोड़कर अन्य शाखाओं को काट देना चाहिए। यह क्रिया पौधे की शुरूआती वृद्धि के समय में करते हैं। पौधा बड़ा हो जाने पर यह प्रक्रिया नहीं करनी चाहिए। पौधे का विकास हो जाने पर पुरानी, सूखी एवं रोगग्रस्त शाखाओं को काटते हैं। इसमें यह ध्यान देना चाहिए कि जड़ों के पास से निकलने वाली शाखाओं बहुत ही तीव्र गति से वृद्धि करती है। अत: उन्हें समय-समय पर काटकर निकालते रहना चाहिए। अन्यथा ये शाखाएं आगे चलकर अधिक वृद्धि कर फूल एवं फल देने लगती हैं, जिससे कि आनार के फल के आकार एवं गुणवत्ता में कमी आती है।

सिंचाई :- सामान्यत: पौध रोपाई के पश्चात सिंचाई अवश्य करनी चाहिए। आनार के नये पौधों में 7 दिन के अंतराल पर ग्रीष्मा में तथा 15 दिन के अंतराल पर शीत ऋतु में सिंचाई करनी चाहिए। आनार का पौधा सूखा सहन करने वाला होता है, परंतु पौधे के विकास के समय पानी अति आवश्यक होता है। आनार के पौधे में फूल लगने से लेकर फलों की वृद्धि तक लगातार आवश्यक सिंचाई करते रहना चाहिए। यदि इस मय मिट्टी में नमीं की कमी होती है तो फूल झड़ने लगते हैं तथा छोटे-छोटे फल भी झड़ जाते हैं। यदि फल का विकास अच्छा बड़े आकार का हो गया है तो ऐसी अवस्था में मिट्टी में नमीं की कमीं होने पर फलों में फटने की समस्या पाई जाती है। अत: आवश्यक नमीं बनाये रखनी चाहिए।

खाद एवं उर्वरक :- आनार के पौधे में खाद एवं उर्वरकों का उचित उपयोग करने से पौधों का अच्छा विकास होता है। इसमें पौध लगाने के पूर्व गड्ढे में गोबर की सड़ी हुई खाद का उपयोग करना चाहिए। आनार के एक से दो वर्ष के पौधे में 250 ग्राम नाईट्रोजन, 125 ग्राम फॉस्फोरस एवं 125 ग्राम पोटाश की मात्रा का प्रयोग करते है। इसमें दो से तीन वर्ष के पौधे में नाईट्रोजन की मात्रा 500 ग्राम कर देते हैं, शेष फॉस्फोरस तथा पोटाश की मात्रा उतनी ही डालते है। तीन से चार वर्ष के पौधे में यह मात्रा 500 ग्राम पोटाश कर देते हैं। चार वर्ष या उससे अधिक उम्र के पौधों में 625 ग्राम नाईट्रोजन, 250 ग्राम फॉस्फोरस एवं 250 ग्राम पोटाश की मात्रा देते रहने से उत्पादन अच्छा प्राप्त होता है। उर्वरकों का प्रयोग उत्तर भारत में बसंत ऋतु में एवं अन्य प्रदेशों में वर्षा ऋतु में किया जाता है।

आनार की उन्नतशीत प्रजातियां :- * **ढोलका :-** इस किस्म का फल बड़े आकार का और छिलके का रंग हरापन लिए हुए भूरा होता है। इसका गूदा गुलाबी सफेद रंग का मीठा एवं रसदार, बीज मुलायम एवं आकार में छोटे होते हैं।

* **अलांडी :-** इसके फल का आकार मध्यम और छिलका हरापन लिए हुए गहरा लाल या गुलाबी होता है। इसका गूदा खट्टा-मीठा एवं बीज कड़ा होता है।

* **मस्कट लाल :-** इसके फलों का आकार मध्यम से छोटा होता है। छिलका मोटा, मध्यम मिठास एवं साथ ही बीज अधिक कड़ा नहीं होता है।

* **स्पेनिश रूबी :-** इसके फल छोटे या मध्यम आकार के होते हैं। इसका छिलका पतला, गूदा स्वादिष्ट एवं मीठा लाल रंग

शेष पृष्ठ 10 पर

जिस प्रकार मनुष्य एवं जानवरों को संतुलित आहार की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार फसलों के लिए भी संतुलित आहार (पोषक तत्वों) की आवश्यकता होती है। मिट्टी की बनावट बड़ी पेचीदा होती है और कोई किसान अपने वर्षों के अनुभव के बावजूद भी अपने खेत की उपजाऊ शक्ति का सही-सही अंदाजा नहीं लगा सकता। अत्याधिक एवं असंतुलित उर्वरकों तथा कृषि रसायनों के प्रयोग से खेत की मिट्टी मृत हो रही है या दिनों दिन उत्पादन क्षमता घट रही है। इसलिए वर्तमान परिस्थितियों में फसलों की उत्पादकता बढ़ाने के लिए आवश्यक है कि खेत की मिट्टी की जांच करवाई जाए और परिणामों के आधार पर उर्वरकों की अनुशंसित मात्रा का संतुलित रूप में प्रयोग सुनिश्चित किया जाए।

मिट्टी जांच की आवश्यकता : मिट्टी जांच से स्पष्ट पता चल जाता है कि भूमि में पोषक तत्वों

की उपलब्धता कितनी है, मृदा में पोषक तत्वों स्थिति क्या है, पोषक तत्वों की उपलब्धता कितनी है, पोषक तत्वों की कमी या अधिकता का पता चलने के बाद, विशेषज्ञ की सलाह अनुसार मिट्टी का उपचार कर खेत को उपजाऊ बनाया जा सकता है।

प्राय: मिट्टी के भौतिक और रासायनिक गुणों के आधार पर ही फसलों का चयन करना अधिक लाभप्रद रहता है, क्योंकि सभी मृदाएं हर फसल उगाने के लिए उपयुक्त नहीं होती। मिट्टी की जांच से पता चलता है कि कौन-सा खेत किस फसल के लिए सबसे उपयुक्त है और कौन-सी फसल उगानी चाहिए। मिट्टी की जांच में भूमि के अम्लीय और क्षारीय गुणों की जांच की जाती है, ताकि पी. एच. मान के आधार पर उचित फसल को उगाया जा सके और भूमि सुधार किया जा सके। सभी फसलों की उचित बढ़वार/उत्पादन हेतु पी.एच. मान 6.5 से 7.5 सबसे उपयुक्त होता है। मिट्टी परीक्षण के आधार पर किसान उर्वरकों और रसायनों पर होने वाले अनावश्यक खर्च से बच सकता है।

मिट्टी जांच के लिए नमूना : मिट्टी जांच फसल कटाई के बाद शुष्क मौसम में नमूना लेना अधिक लाभदायक रहता है। फसल बोने या रोपाई करने के एक माह पूर्व खाद व उर्वरकों के प्रयोग से पहले ही मिट्टी परीक्षण करवाएं। ध्यान रखें कि खेत में उर्वरक या कोई जैविक खाद लगाए कम से कम 25-30 दिन हो गए हों अन्यथा परिणाम गलत हो सकता है। आवश्यकता हो तो खड़ी फसल में से भी कतारों के बीच से नमूना लेकर परीक्षण के लिए भेज सकते हैं, ताकि खड़ी फसल में पोषण सुधार हेतु आवश्यक क्रिया-कलाप किए जा सकें। क्षारीय व लवणीय मृदा में फसल वृद्धि के समय जब सबसे अधिक लवण दिखाई दें तभी नमूना लेना चाहिए। इससे मृदा की सही दशा व स्थिति का पता चलता है। आमतौर पर तीन साल में एक बार मिट्टी का नमूना लेना ठीक रहता है, परन्तु संघन खेती वाले खेतों का परीक्षण प्रति वर्ष करवाना चाहिए।

मिट्टी नमूना लेने का तरीका : खेत से नमूना लेने के लिए फावड़े या खुरपी से अंग्रेज़ी के V आकार का 15 सैंटीमीटर गहराई तक गड्ढा खोद कर इसकी मिट्टी अलग कर दें, फिर इसकी दीवार के साथ पूरी गहराई तक मिट्टी की समान मोटाई (लगभग 2.5 सैंटीमीटर मोटी) में मिट्टी की परत काट कर निकाल लें। एक एकड़ में 5 जगह से नमूना लिया जाना चाहिए। इन पांच जगह की मिट्टी को मिला कर एक संयुक्त नमूना बनाया जाता है।

संयुक्त नमूना तैयार करने की विधि : एक खेत से लिए गए सभी नमूनों को एक बिल्कुल साफ सतह पर या कपड़े या पॉलीथीन शीट पर रख कर खूब अच्छी तरह मिला कर एक समान कर लें। पूरी मात्रा को एक समान मोटाई में फैला लें तथा हाथ से चार बराबर भागों में बांट लें। आमने-सामने वाले दो भाग हटा दें तथा शेष दो को फिर मिला कर चार भागों में बांट दें। यह क्रिया तब तक दोहराते रहें, जब तक मिट्टी की कुल मात्रा लगभग 500 ग्राम ना बच जाए। नमूने को कपड़े की थैली में भर कर नाम, खेत संख्या, फसल उगाने का ब्यौरा देकर प्रयोगशाला में जांच के लिए भेजें।

मिट्टी का प्रतिनिधि नमूना लेने में सावधानियां :

1. नमूना लेते समय सतह पर पड़ा हुआ कूड़ा, खरपतवार, गोबर आदि पहले ही हटा दें।

2. नमूना लेने के लिए प्रयोग में लाए जाने वाले औज़ार, थैलियां आदि बिल्कुल साफ होनी चाहिए।

3. सामान्यत: मिट्टी की जांच के लिए नमूने 0-15 सैंटीमीटर की गहराई तक ही लेने चाहिए, क्योंकि इसी गहराई तक फसलें पोषक तत्वों का अवशोषण करती है। आनाज, तिलहन, सब्ज़ी, फूल, चारे और मौसमी फसल के लिए नमूना ऊपरी सतह (0-15 सैंटीमीटर) से घास-फूस, कंकड़-पत्थर आदि साफ करके नमूना लें। गहरी जड़ों वाली या दीर्घकालिक फसलें जैसे कि गन्ना या सूखे की स्थिति के तहत बोई गई फसलों के लिए नमूने की गहराई 30 सैंटीमीटर तक होनी चाहिए। वृक्षारोपण अथवा बागवानी के लिए मिट्टी के नमूने 4-5 जगहों से 0-30 सैंटीमीटर, 30-60 सैंटीमीटर तथा 60-90 सैंटीमीटर तक अलग-अलग लेने चाहिए, क्योंकि इनकी जड़ें काफी गहराई तक जाती है।

4. मिट्टी का रंग, ढलान, उपजाऊ शक्ति को ध्यान में रखते हुए भिन्न लगने वाले भागों से अलग-अलग नमूने लें। समस्या ग्रसित मिट्टी जैसे अम्लीय (तेज़ाब) व क्षारीय रेह के नमूने ऐसे स्थानों से लेने चाहिए, जहां फसल की वृद्धि अन्य स्थानों की तुलना में कम हो अथवा पोषक तत्वों की कमी के लक्षण अधिक हों। उस स्थान से नमूना ना लें, जहां पर खाद, उर्वरक, चूना, जिप्सम या कोई अन्य भूमि सुधारक रसायन तत्काल लगाया गया हो।

5. पेड़ों के नीचे, खाद के गड्ढों के आस-पास तथा खेत की मेढ़ों से लगभग 2 मीटर दूरी तक नमूने ना लें।

6. ऊसर आदि की समस्या से ग्रसित खेत या उसके किसी भाग का नमूना अलग से लें।

7. जहां तक संभव हो गीली मिट्टी का नमूना ना लें, अन्यथा उसे छाया में सुखा कर ही प्रयोगशाला में भेजें।

8. नमूनों को खाद के बोरों, दवाईयों, ट्रैक्टर आदि की बैटरी या अन्य किसी रसायन आदि से दूर रखें।

9. नमूना सिंचाई करने या बरसात या घास-फूस जलाने के तुरंत बाद ना लें।

वर्तमान परिस्थितियों में फसलों की उत्पादकता बढ़ाने के लिए आवश्यक है कि खेत की मिट्टी की जांच करवाई जाए।

शेष पृष्ठ 5 की

धान के पैदा होने वाले खरपतवारों को कैसे खत्म करें?

मजदूरों की दिहाड़ी में बढ़ोत्तरी होने से गुड़ाई किसान को बेहद महंगी पड़ रही है और कई बार मजदूरों के समय पर न मिलने से गुड़ाई सही समय पर नहीं होती। इससे खरपतवार बेहद तेजी से बढ़कर अधिक क्षेत्र में फसल को ढ़क लेता है और फसल का उत्पादन कम कर देता है।

2. खरपतवारनाशक दवाईयों के प्रयोग से :- धान में पैदा हुए खरपतवारों की कामयाबी की रोकथाम खरपतवारनाशक दवाईयों के प्रयोग से की जा सकती है। धान के घास वाले खरपतवार जैसे कि सवांक, सवांकी, कनकी घास आदि और खरपतवारों की रोकथाम नोमनी-गोल्ड (बिसपाईरीबैक) का छिड़काव करके की जा सकती है। बैड़ों पर लगे धान में नोमनी-गोल्ड की थोड़ी अधिक मात्रा लगती है, परन्तु धान के खेत में चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार जैसेकि धरीला, सणी आदि की बहुतात हो तो इन खरपतवारों को काबू करने के लिए आलग्रिप (मैटसल्फूरान) 20 डब्ल्यू.पी. या सनराईज 15 डब्ल्यू. डी.जी. (इथोक्ससल्फुरान) का उखाड़के लगाने के बाद 15-20 या 20-25 दिन बाद छिड़काव करना चाहिए। (सारणी-1)। छिड़काव से पहले फसल में खड़े

छिड़काव करना चाहिए। सिफारिश की गई दवाईयों को सारणी:1 में बताई मात्रा के हिसाब से 150 लीटर पानी में घोल कर पौध पानी को निकाल देना चाहिए। खरपतवारों की सही रोकथाम के लिए छिड़काव समय पर करना बेहद जरूरी है।

खरपतवारनाशक दवाईयों के प्रयोग के समय में ख्याल रखने योग्य बातें:-

1. अच्छे नतीजों के लिए पंजाब कृषि विश्वविद्यालय की तरफ से सिफारिश की गई खरपतवारनाशक दवाईयों का प्रयोग करें। खरपतवारनाशक दवाईयों का चुनाव धान में खरपतवारों की किस्म के मुताबिक करें और खरपतवारों को काबू में रखने के लिए प्रत्येक वर्ष दवाई बदल कर ही प्रयोग करें।

2. खरपतवारनाशक दवाईयों को खेत में डालने का समय, तरीका और मात्रा हमेशा सिफारिश के अनुसार ही रखें और कभी भी अधिक या कम मात्रा में प्रयोग न करें।

3. खरपतवारनाशक दवाईयों का छिड़काव नैपसेक स्प्रेअर और फ्लैट फोन या फल्ड जैट नोजल के साथ ही करें।

4. एक सामान और बढ़िया छिड़काव करने वाले की गति के अनुसार पानी का अंदाजा लगा लें। छिड़काव हमेशा कम हवा वाले दिन ही करें।

5. छिड़काव करते वक्त दस्ताने, गैस मास्क, पूरी बाजू की कमीज एवं पजामा या पैंट पहनें। खरपतवारनाशक दवाईयों के घोल को हर बार हिला कर ही पंप में डालें।

केंचुआ खाद
लाभ एवं बनाने की विधि

आज के महंगाई के ज़माने में अधिक पैदावार लेने के लिए किसान रासायनिक उर्वरकों का बहुत ज्यादा प्रयोग कर रहे हैं, जिससे उन्हें अच्छी पैदावार तो मिल जाती है, परन्तु इससे समय के साथ भूमि की उपजाऊ शक्ति कम होती रहती है। भूमि की उपजाऊ शक्ति को बनाए रखने के लिए समन्वित तत्व प्रबंधन अपनाना चाहिए, जिसके अन्तर्गत प्राकृतिक खादों का प्रयोग बढ़ेगा। इन खादों में पौधे के लिए आवश्यक मुख्य तत्व, गौण तत्व व सूक्ष्म तत्व मौजूद होते हैं। गोबर को हम अधिकतर ईंधन के रूप में प्रयोग करते हैं, जिससे वातावरण भी प्रदूषित होता है। हमें गोबर का प्रयोग खाद बनाने में करना चाहिए। सामान्य तौर पर हम गोबर की खाद या कम्पोस्ट बनाते हैं, तो उसमें कुछ पोषक तत्वों की हानि हो जाती है। हम इस खाद या कम्पोस्ट को केंचुओं की सहायता से बना सकते हैं। केंचुए जैविक कचरे को खाकर गुणवत्ता युक्त पदार्थों में रूपांतरित कर देते हैं। इस विधि को हम वर्मी कम्पोस्टिंग कहते हैं व इससे तैयार कम्पोस्ट को वर्मी कम्पोस्ट या केंचुआ खाद कहते हैं। खाद बनाने की प्रक्रिया में जैविक कचरा केंचुओं के द्वारा खाया व पचाया जाता है, इस दौरान केंचुओं की आंतों द्वारा उत्सर्जित स्रावित पदार्थ पाचित पदार्थों में मिल जाते हैं, जो शरीर से निकलने के बाद वर्मी कास्ट के रूप में केंचुआ खाद बनाते हैं। ये वर्मी कास्ट पौधे के लिए हानिकारक जीवों को दूर भगाने का काम करते हैं। केंचुआ खाद को हम ना केवल अपने खेतों में प्रयोग कर सकते हैं, बल्कि इस खाद को बेच कर हम काफी अच्छी आमदनी भी कमा सकते हैं।

केंचुआ खाद के प्रयोग के लाभ :

* पौधे के लिए आवश्यक पोषक तत्व संतुलित मात्रा में मिलते हैं।

* इस खाद में पौधे की वृद्धि वाले हार्मोन पाए जाते हैं।

* इस खाद के उपयोग से फसलों की अधिक उत्पादकता एवं उच्च गुणवत्ता लाई जा सकती है।

* खाद के प्रयोग से मिट्टी में हानिकारक रसायनों की पौधों के लिए उपलब्धता में कमी आ जाती है।

* मिट्टी में लाभदायक सूक्ष्म जीवों की संख्या में बढ़ोत्तरी होती है।

* मिट्टी में जैविक पदार्थ की मात्रा बढ़ती है तथा भूमि की भौतिक संरचना में सुधार होता है, जिसके कारण भूमि की उपजाऊ शक्ति बढ़ती है।

* मिट्टी की पानी पकड़ने की क्षमता में वृद्धि होती है।

* मिट्टी में पानी व वायु का संचार अच्छी तरह से होता है, जिसके कारण पौधे की जड़ों की वृद्धि अच्छी होती है।

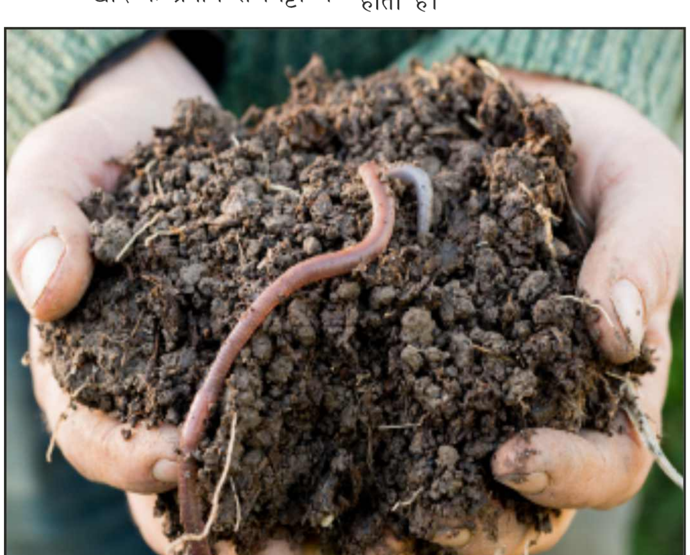

* गोबर को ईंधन के रूप में प्रयोग होने के बाद होने वाले पर्यावरण प्रदूषण से बचा जाता है।

* पशुशाला के कूड़े करकट एवं फसलों के अवशेषों का सही उपयोग होता है।

केंचुआ खाद में विभिन्न तत्वों की मात्रा :

नत्रजन	:	1 से 3 प्रतिशत
फास्फोरस	:	1 से 1.5 प्रतिशत
पोटाश	:	2 से 3 प्रतिशत

इन मुख्य तत्वों के अलावा कैल्शियम, मैग्नीशियम, सल्फर (गौण तत्व) व लोहा, जस्ता, तांबा, मैगनीज़ व बोरॉन इत्यादि (सूक्ष्म तत्व) भी कुछ मात्रा में पाए जाते हैं।

केंचुआ खाद बनाने की विधि :

1. मेढ़ में बनाना : इस विधि से खाद जल्दी से तैयार हो जाता है। मेढ़ की लम्बाई, चौड़ाई और ऊंचाई निम्नलिखित प्रकार से रखते हैं :

लंबाई	:	आवश्यकता अनुसार
चौड़ाई	:	3 फुट
ऊंचाई	:	2 फुट

2. गड्ढे में बनाना : बहुत अधिक गर्मी या सर्दी के मौसम में केंचुओं को अनुकूल वातावरण प्रदान करने के लिए यह विधि अपनाई जा सकती है। हम कच्चे गड्ढे का प्रयोग करते हैं। गड्ढा ईंट व सीमेंट से पक्का भी बनाया जा सकता है। गड्ढे की लम्बाई, चौड़ाई और गहराई निम्नलिखित प्रकार से रखते हैं :

लंबाई	:	आवश्यकता अनुसार
चौड़ाई	:	3 फुट
गहराई	:	2 फुट

3. सीमेंट के घेरे में बनाना : सीमेंट का घेरा ज़मीन की सतह से ऊपर रख कर खाद को तैयार करने के प्रयोग में लाते हैं। जब खाद तैयार हो जाती है, तो इस घेरे को हटा कर केंचुओं व खाद को अलग कर देते हैं। फिर इस घेरे को किसी अलग स्थान पर रख देते हैं और फिर से खाद तैयार करते है। घेरे का निम्नलिखित आकार अच्छा माना जाता है :

व्यास	:	3 फुट
ऊंचाई	:	1 फुट

खाद बनाने की तीनों विधियों में विभिन्न सामग्रियों का प्रयोग निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है :

1. सबसे नीचे लगभग आधा फुट मोटी परत बनाते हैं, जिसमें पुराने अखबार या गत्ते बिछा कर उनके ऊपर पराली, सरसों, मोटी कड़वी, अन्य भूसे, पेड़ों की छाल या लकड़ी का बुरादा आदि डाल सकते हैं।

2. इस परत के ऊपर एक-तिहाई फुट (4 इंच) मोटी गोबर (2 सप्ताह पुराना) की परत लगाई जाती है।

3. इस परत के ऊपर एक से डेढ़ फुट मोटी घर के कूड़ा-करकट या फसल अवशेषों की परत लगाई जाती है।

4. इसके ऊपर खेत की मिट्टी की पतली सी परत (5 सैंटीमीटर) लगाई जा सकती है व इस परत के ऊपर पतली सी गोबर की परत (5 सैंटीमीटर) लगाई जा सकती है।

5. ऊपर दी गई विधि से बनाए गए मेढ़, गड्ढे या सीमेंट के घेरे में 250 केंचुए प्रति क्विंटल सामग्री की दर से लगा दिए जाते हैं।

6. केंचुए केवल अंधेरे में काम करते हैं, इसलिए मेढ़, गड्ढे या सीमेंट के घेरे में डाली गई सामग्री को कड़वी या बोरी से अच्छी तरह से ढक देते हैं।

7. केंचुओं के अच्छे प्रजनन व सही तरह से काम करने के लिए अच्छी नमी की आवश्यकता होती है। बेड में उपयुक्त नमी (नमी संग्रहण क्षमता का 75 प्रतिशत) होना चाहिए। इस नमी को बनाए रखने के लिए सर्दियों में एक बार व गर्मियों में 3 बार पानी देना चाहिए। गर्मियों में सुबह, दोपहर व शाम को पानी देना चाहिए। शुरूआत में पानी की अधिक आवश्यकता होगी, जोकि समय के साथ कम होती जाएगी। अगर खाद कम मात्रा में तैयार किया जा रहा है, तो छिड़काव से पानी दें, नहीं तो पानी की नाली से पानी दे सकते हैं। पानी केवल इतनी मात्रा में दें, जिससे पूरी सामग्री ऊपर से नीचे तक गीली हो। पानी को अधिक मात्रा में भी नहीं देना चाहिए, क्योंकि इससे वायु के संचार में बाधाएं उत्पन्न होंगी, जिससे कि केंचुओं के प्रजनन व खाद बनाने की क्षमता पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा।

8. केंचुए बिना किसी अधिक देखभाल के अपने आप को जिंदा रख सकते हैं। ये अधिक गर्मी व सर्दी में भी अपने आप को जीवित रखते हैं, परन्तु इन परिस्थितियों में इनकी प्रजनन की क्षमता व भोजन ग्रहण करने की क्षमता कम हो जाती है। खाद बनाने के लिए 15 से 25 डिग्री का तापमान अनुकूल रहता है। सर्दियों में तापमान को अधिक रखने के लिए 8 से 10 दिन में ताज़ा गोबर की पतली सी परत खाद्य सामग्री पर लगानी चाहिए।

9. गर्मियों में तापमान को थोड़ा कम रखने के लिए खाद बनाने के स्थान के चारों तरफ 2 से 3 फुट की चौड़ी ढैंचा की पट्टी लगानी चाहिए।

10. हर 15 दिन के अंतराल पर सम्पूर्ण सामग्री की पलटाई करनी चाहिए। इस प्रकार से 60 से 70 दिन में हम खाद तैयार कर सकते हैं। जब खाद का रंग गहरे भूरे से काला हो गया हो, तो यह हमें दर्शाता है कि खाद तैयार है। खाद तैयार होने के बाद पानी देना बंद कर देना चाहिए ताकि केंचुए नीचे चले जाएं। ऊपर की खाद को छान कर अलग कर लेते हैं, जिससे केंचुए व खाद अलग-अलग हो जाते हैं।

जहां पर केंचुआ खाद तैयार कर रहे हों, वहां कोने में एक गड्ढे का निर्माण करना चाहिए, जिसमें गोबर व फसल अवशेष डाले जा सकें। फसल अवशेषों को काट कर डालें। गोबर व फार्म अवशेषों को गड्ढे में डाल कर प्रति दिन पानी से गीले करते रहना चाहिए। इस प्रकार 2 सप्ताह में सामग्री मेढ़, गड्ढे या सीमेंट के घेरे में डालने के लायक हो जाएगी। केंचुओं को आंशिक रूप से गले कार्बनिक पदार्थ ही देने चाहिए।

केंचुए की खाद बनाते वक्त ध्यान देने योग्य बातें

- खाद केवल छायादार स्थान में ही बनाएं।
- खाद बनाने वाली जगह पर बरसात का पानी एकत्रित नहीं होना चाहिए।
- कभी–कभी पशुओं को कीड़े मारने की दवाईयां दी जाती हैं, तो ऐसी गोबर का प्रयोग ना करें, जिसमें इनके अंश होने की आशंका हो।
- घर में इस्तेमाल किए गए साबुन और डिटर्जेंट के पानी को खाद बनाते समय प्रयोग नहीं करना चाहिए।
- छोटे कीड़े–मकौड़े, चिड़िया, चूहे व अन्य छोटे जंतु केंचुए को नुकसान पहुंचाते हैं। इसलिए इनसे बचाव के पर्याप्त उपाय किए जाने चाहिए।

शेष पृष्ठ 7 की

आनार की आधुनिक खेती

का, बीज छोटे तथा मुलायम होते हैं।

*** पेपर सेल :–** इसके फल मध्यम आकार के होते हैं। यह पतले छिलके वाला एवं मीठा जूस वाला फल होता है। इसके बीज मुलायम होते हैं।

*** गणेश :–** इसके फलों का आकार मध्यम से बड़ा, गूदा मीठा, रसदार एवं स्वादिष्ट होता है। साथ ही इसके बीज छोटे तथा मुलायम होते हैं।

*** ज्योति :–** इस प्रजाति का विकास भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बेंगलुरू द्वारा किया गया है। इसका दाना गहरा लाल रंग का एवं फल का आकार बड़ा होता है इसके दाने में पल्प एवं रस की मात्रा बहुत अधिक होती है तथा बीज बहुत मुलायम होता है।

*** अरक्ता :–** इस प्रजाति के फल का आकार गणेश से छोटा होता है। इसका दाना गहरे लाल रंग का एवं बीज मुलायम होता है। यह प्रजाति अपने रंग के कारण

अधिक पसंद की जाती है।

बहार नियंत्रण :– आनार की फसल में सामान्यत: वर्ष में दो बार जून-जुलाई (मृग बहार) एवं फरवरी-मार्च (अंबे बहार) में फूल आते हैं साथ ही कभी-कभी इसमें सितंबर-अक्तूबर (हस्त बहार) में भी फूल दिखाई पड़ते हैं। व्यापारिक दृष्टिकोण से केवल एक बहार की फसल लेना अधिक लाभप्रद पाया गया है। इसमें बहार का निर्धारण पानी की उपलब्धता एवं बाजार की मांग के अनुसार किया जाना चाहिए। जिन क्षेत्रों में सिंचाई की सुविधा पर्याप्त नहीं होती है, वहां पर फल मृग बहार से प्राप्त किये जाते हैं। आनार के फलों के पकते समय वातावरण में अधिक नमीं होने पर फलों पर कीटों का प्रकोप बढ़ जाता है, साथ ही फल कम मीठे होते हैं। सामान्यत: मृग बहार से प्राप्त फल कम मीठे एवं कम स्वादिष्ट होते हैं और अंबे बहार से प्राप्त फल मीठे एवं बहुत स्वाष्टि होते है इनका बाजार मूल्य भी अधिक होता है, हमें जिस बहार का फल प्राप्त करना होता है, उसके फल आने के दो माह पूर्व सिंचाई बंद कर देनी चाहिए। तत्पश्चात पौधों में अच्छी प्रकार से निराई-गुड़ाई करके उचित मात्रा में खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग करके नियमित सिंचाई करने से पौधे में अधिक फूल एवं फल आते हैं।

अंतरासस्यन :– आनार का पौधा जब तक आर्थिक उत्पादन देना आरंभ नहीं कर देता है या 2-3 वर्ष तक के आनार के बाग में अंतरवींय फसलों के रूप में सब्जियों की खेती करना अधिक लाभकारी होता है। इससे पौधों का विकास भी अच्छा हो जाता है, साथ ही सब्जी उत्पादन से उस समय अधिक लाभ की प्राप्ति की जा सकती है।

फलों की तुड़ाई :– आनार का फल, फूल आने के लगभग 5-6 माह बाद तुड़ाई के लिए तैयार होता है। जब आनार के फल का रंग हल्का भूरा या पीला रंग लिए होता हा। तथा फल को हल्का पीटने पर ध्वनि निकलती है। पूर्ण रूप से सुनिश्चित होने पर फल को सिकेटियर की सहायता से काट लेते हैं। यदि पूर्ण पके फल को तोड़ने में देर करते हैं तो फलों में फटने की क्रिया प्रारंभ हो जाती है, जिससे उपज में भारी कमीं आती है।

उपज :– आनार का पौधा चार वर्ष का होने पर फल देना प्रारंभ कर देता है। इसका उत्पादन 10 वर्ष की आयु तक बढ़ता रहता है। 8 से 10 वर्ष का पौधा 18 से 20 टन प्रति हैक्टेयर के हिसाब से फल देता है। आनार का पौधा 25-30 वर्ष की आयु तक आर्थिक उत्पादन देता है और उसके बाद धीरे-धीरे उत्पादन में कमीं आने लगती है।

प्रमुख कीट एवं उनका प्रबंधन छाल भेदक कीट :– इस प्रकार के कीट पौधों की छाल को खाकर पौधों की डालियों के अंदर सुरंग बना डालते हैं, जिससे पौधे की डाल कमजोर पड़ जाती है। इसमें एक कीड़ा एक छिद्र में रहता है, परंतु इनका प्रकोप अधिक होने पर पौधे से फल का उत्पादन प्राप्त नहीं होता।

नियंत्रण :– इस कीट से प्रभावित बाग को साफ-सुथरा रखना चाहिए। कीट से प्रभावित शाखाओं को काटकर बाग से निकाल देना चाहिए। इससे प्रत्येक छिद्र में रूई में कार्बन-बाईसल्फेट, पेट्रोल या मिट्टी का तेल डालकर प्रत्येक छिद्र में डालते हैं। तत्पश्चात छेद को लाल मिट्टी से बंद कर देना चाहिए। इसके अतिरिक्त कार्बरिल 2.5 ग्राम प्रति लीटर या मेथोमिल 3.5 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करने से पौधों को सुरक्षित बचाया जा सकता है।

तना छेदक :– इस कीट का प्रकोप पुराने या उपेक्षित बागों में अधिक पाया जाता है। इसकी इल्लियां शाखाओं में छिद्र बना लेती हैं। इसमें मुख्य शाखा प्रभावित होती है। इस प्रकार कीट शाखाओं में छिद्र का जाल बना लेते हैं तथा रात्रि में छिद्र से निकलकर छिलके को खाते हैं।

नियंत्रण :– इससे प्रभावित बागों को साफ-सुथरा रखना चाहिए। साथ पेट्रोल या मिट्टी के तेल में रूई भिगोकर छिद्र में डालते हैं, तत्पश्चात छिद्र को गीली मिट्टी से बंद कर देना चाहिए।

तितली :– इसमें मादा तितली आनार के फूल एवं फलों पर अंडे देती है। इससे इल्ली निकलकर फलों में छिद्र करके प्रवेश कर जाती है। यह फलों में प्रवेश करने के बाद फलों के बीज को खाती रहती है, जिससे फल का विकास रूक जाता है और फल पौधे से गिर जाते हैं।

नियंत्रण :– इसके नियंत्रण के लिए जुलाई में फूल व फल बनते समय 3 मि.ग्रा. प्रति लीटर कार्बारिल 50 डब्ल्यू.पी. या 0.02 प्रतिशत डेल्टामेथ्रीन नामक दवा का 15 दिन के अंतर पर दो छिड़काव करना चाहिए।

मिलीबग :– नवंबर-दिसंबर में इसके शिशु फलों तथा टहनियों पर एकत्र होकर रस को चूस लेते हैं। इससे पौधे का विकास रूक जाता है। ये कीट एक प्रकार का मीठा द्रव जैसा पदार्थ छोड़ते हैं, जिससे बाद में काली फफूंदी बन जाती है।

नियंत्रण :– इस कीट के नियंत्रण के लिए पौधे पर मोनोक्रोटोफॉस 36 एस.एल. या डाईमिथोएट 30 ई.सी. एक मिली/लीटर अथवा मेलाथियान 0.2 प्रतिशत के घोल का छिड़काव करने से पूर्ण रूप से नियंत्रण हो जाता है। यदि मिट्टी में फोरेट 10 जी नामक दवा को 20 ग्राम प्रति पौधे के जड़ क्षेत्र में मिला दिया जाये तो भी इसका नियंत्रण संभव होता है।

फल छेदक मक्खी :– इस कीड़े का प्रभाव मुख्य रूप से वर्षा ऋतु में अधिक होता है। ये मक्खियां आनार के फल पर अंडा देती है तथा लार्वा फल में छिद्र करके अन्दर पहुंचकर गूदे को खाता रहता है, जिससे फलों में सड़न पैदा होती है और फल गिर जाते हैं।

नियंत्रण :– इसके नियंत्रण के लिए फ्लाई ट्रैप जिसमें मिथाईल यूजेनाल होता है, का प्रयोग करने से अच्छा परिणाम मिलता है।

प्रमुख रोग एवं उनका प्रबंधन :– आनार की फसल विभिन्न प्रकार के रोगों से प्रभावित होती है।

फल चित्ती :– यह रोग एक प्रकार के कवक के द्वारा प्रसारित किया जाता है। इस रोग से प्रभावित फल पर छोटे-छोटे धब्बे गोल भूरे-पीले रंग के पड़ जाते है, जिससे फल कम आकर्षक दिखाई पड़ता है। इस रोग का प्रकोप बढ़ने पर धब्बे धीरे-धीरे फल के अंदर की ओर बढ़ने लगते है। अंदर तक फल को हानि पहुंचाते हैं, जिससे कि फल सड़ जाते हैं

और फल खाने योग्य नहीं रहता

रोकथाम :– इस रोग से प्रभावित शाखाओं को काटकर नष्ट कर देना चाहिए। फसल में इन्डोथेन एम-45 या कैप्टान 2.5 ग्राम दवा का प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर फल आने के बाद छिड़काव करना चाहिए।

पर्ण चित्ती :– यह रोग कवक के द्वारा पैदा होता है। इस रोग का प्रकोप आनार की पत्तियों पर पड़ता है। इससे प्रभावित आनार की पत्तियों पर ऊपर की ओर काले रंग का धब्बा दिखाई पड़ता है। इस रोग का प्रकोप वर्षा के मौसम में अधिक देखा गया है।

रोकथाम :– इसकी रोकथाम के लिए 0.3 प्रतिशत के लिए 0.3 प्रतिशत के इन्डोथेन एम-45 या इन्डोथेन जेड-78, 0.2 प्रतिशत डाइफ़ज़ेल्टान अथवा 0.1 प्रतिशत कैप्टान नामक दवा का छिड़काव 15 दिन के अंतराल पर करना चाहिए।

फल सड़न रोग :– यह एक कवक जनित रोग है। इस रोग से प्रभावित फल में नीचे की ओर से या किनारे से छिलके का रंग बदलने लगता है। कुछ दिनों के बाद देखने पर फल भूरे काले रंग का होने लगता है तथा फलों में सड़न होने लगती है एवं एक सप्ताह के अंदर पूरा फल सड़ जाता है।

रोकथाम :– इस रोग से प्रभावित फल एवं शाखा को तुरंत पौधे से अलग कर जला देना चाहिए साथ इन्डोथेन एम-45 या इन्डोथेन जेड 78 के 0.25 प्रतिशत घोल का छिड़काव करना चाहिए। अथवा 5 प्रतिशत बाविस्टिन के घोल का छिड़काव करने से रोग के प्रभाव को समाप्त किया जा सकता है।

अल्टरेनरिया फल चित्ती :– इस रोग से प्रभावित फल पर छोटे-छोटे भूरे रंग के गोलाकार धब्बे दिखाई देते हैं। इसका प्रकोप होने पर फलों में सड़न होने लगती है तथा फल खाने योग्य नहीं रहते।

रोकथाम :– इससे प्रभावित फल को पौधे से अलग करके नष्ट कर देना चाहिए तथा इंडोथेन एम-45 के 0.25 प्रतिशत घोल का छिड़काव करने से फसल को बचाया जा सकता है।

व्याधियां

फलों का फटना :– यह आनार को हानि पहुंचाने वाली व्याधि है। इसमें आनार का फल पौधे में लगा रहता है एवं पकने की अवस्था में पहुंचते ही फल फटने लगता है, जिससे कि आनार का बाजार भाव कम हो जाता है। आनार में फलों का फटना शुष्क जलवायु वाले क्षेत्रों में अधिक पाया जाता है। इसका संबंध मिट्टी की नमीं से भी होता है। अधिक समय तक मिट्टी में नमीं रहने पर, एकाएक अधिक सिंचाई कर देने पर या जीवाणु झुलसा का अधिक प्रकोप होने पर भी इसमें बहुत अधिक फलों का फटना पाया जाता है। पूर्ण पके फल की समय से तुड़ाई न करने पर भी फलों का फटना पाया जाता है। कभी-कभी मिट्टी में बोरॉन तत्व की कमीं होने पर भी फल फटने लगता है।

रोकथाम :– इसकी रोकथाम के लिए सर्व प्रथम मिट्टी में सामान्य नमीं बनाए रखने के लिए गोबर की सड़ी हुई खाद का प्रयोग करना चाहिए। फलों के फटने की प्रक्रिया को रोकने के लिए आनार में बोरॉन 50 पी.पी.एम. अथवा जिब्रेलिक एसिड 40 पी.पी.एम. का छिड़काव करने पर हमें इस व्याधि से सुरक्षा प्राप्त हो जाती है।

तुड़ाई पश्चात फलों का श्रेणीकरण :– आनार का फल तुड़ाई के पश्चात अपने आकार, रंग, वजन अथवा बाह्य छिलके के आधार पर विभिन्न वर्गो में वर्गीकृत किया जाता है।

सुपर आकार :– इसमें फल का वजन 750 ग्राम से अधिक होता है। फल देखने में सुंदर, बड़ा, गहरे लाल रंग का, दाग धब्बों से रहित एवं आकर्षक होता है।

राजा आकार :– फल आकर्षक, बड़ा, 500 से 750 ग्राम वजन का गहरा लाल रंग, दाग धब्बों से रहित होता है।

रानी आकार :– फल बड़ा, आकर्षक, 400 से 500 ग्राम वजन का लाल रंग एवं दाग धब्बों से रहित होता है।

राजकुमार आकार :– फल सुंदर, आकर्षक, 300 से 400 ग्राम वजन का गहरे लाल रंग का दाग धब्बों से रहि होता है।

12-ए :– इसमें फलों पर 1 से 2 धब्बे होते हैं। फल लाल रंग का 250 से 300 ग्राम वजन का होता है।

बाजरे की पैदावार बढ़ाने के मुख्य सूत्र

बाजरा भारत की महत्वपूर्ण अनाज वाली फसल है। अनाज व चारे की पूर्ति की वजह से दोहरी उपयोगिता वाली फसल होने के कारण एवं सूखा सहन करने की क्षमता की वजह से भारत के शुष्क क्षेत्रों में बाजरा का विशेष महत्व है। खरीफ मौसम में उगाई जाने वाली हरियाणा प्रदेश की मुख्य फसल होते हुए भी इसकी औसत उपज तथा उपज क्षमता में काफी अंतर पाया जाता है, जो सामान्यतः निम्न कारणों से होता है।

बाजरा की कम पैदावार के मुख्य कारक

1. बाजरा की खेती अधिकतर असिंचित क्षेत्रों में किया जाना व पूर्ण रूप से बारिश पर निर्भर।

2. अधिकतर कम उपजाऊ

भूमि में बाजरा की खेती करना एवं ऐसी भूमि में पानी संचय क्षमता कम होना।

3. उच्च उत्पादन तकनीक का सही इस्तेमाल न करना।

4. उच्च गुणवत्तायुक्त बीजों की समय पर उपलब्धता न होना।

5. बारानी क्षेत्रों के लिए किस्मों का अभाव।

6. किसानों में उच्च गुणवत्ता के बीजों के प्रति अज्ञानता का होना।

7. समय व भूमि अनुसार उपर्युक्त संकर किस्मों का चुनाव न करना।

8. उत्पादन के साथ कीमतों में उतार-चढ़ाव जिसके कारण किसानों का बाजरा उगाने के लिए रूझान कम होना।

उपर्युक्त कारणों को ध्यान में रखकर बाजरे की पैदावार बढ़ाने के उन्नत कारक निम्नलिखित हैं, जिन पर यदि किसान भाई ध्यान दें तो अधिकतम पैदावार लेकर अच्छा मुनाफा कमाया जा सकता है।

बाजरे की पैदावार बढ़ाने के उन्नत कारक

1. बारानी क्षेत्रों में बुवाई हेतु 70-75 दिन तक पकने वाली किस्मों का ही चयन करना चाहिए, जिनमें मुख्यत: एच.एच.बी.-234, एच.एच.बी.-226, एच.एच.बी.-223, एच.एच.बी.-197 व एच.एच.बी.-67 संशोधित इत्यादि हैं, जहां पर 2-3 सिंचाई तक का पानी उपलब्ध है, वहां पर 80 दिनों से ज्यादा तक पकने वाली किस्मों का चयन किया जा सकता है। बीज उचित स्त्रोत से खरीदें।

2. बीमारी रोकने तथा नमी संरक्षण के लिए गर्मियों में 1-2 गहरी (15 से 20 सैं.मी. गहराई तक) जुताई वर्ष अंतराल पर अत्यंत आवश्यक है।

3. सिफारिश अनुसार प्रमाणित एवं उपचारित बीज उचित मात्रा में यानि 1.5 से 2.0 कि.ग्रा. प्रति एकड़ ही प्रयोग करें ताकि प्रति एकड़ पौधों की सही

संख्या (60-65 हजार पौधे प्रति एकड़ बारानी अवस्था में तथा 75-80 हजार पौध सिंचित अवस्था में) प्राप्त हो सकें।

4. बुवाई का उचित समय जुलाई का पहला पखवाड़ा (आधा) है मगर 10 हून के बाद 50 मि.मी. वर्षा होने पर भी बुवाई की जा सकती है।

5. बुवाई कतारों में ही करनी चाहिए तथा कतार से कतार की दूरी 45 सैं.मी. एवं पौधे से पौधे की दूरी 10 से 12 सैं.मी. रखें। बीज 2 सैं.मी. से ज्यादा गहराई में न डालें।

6. बुवाई के लिए रिजन सीड ड्रिल का प्रयोग करना चाहिए ताकि कुरंड होने से बचा जा सके।

7. खरपतवार नियंत्रण तथ नमी संरक्षण के लिए बुवाई से 15 व 30 दिन बाद निराई-गुड़ाई अवश्य करनी चाहिए ताकि पौधों की जड़ों तक हवा का आवागमन उचित मात्रा में हो सके।

8. खरपतवारनाशक एट्राजीन (50 प्रतिशत घु.पा.) 400 ग्राम प्रति एकड़ 250 लीटर पानी में मिलाकर बुवाई के समय छिड़कें। यह दवा बुवाई के 15 दिन तक भी उतनी ही मात्रा में प्रयोग कर सकते हैं, यदि समय पर प्रयोग न कर पाए हों।

9. बुवाई के समय आधी नत्रजन तथा पूरी फास्फोरस (16 कि.ग्रा. नत्रजन+8 कि.ग्रा. फास्फोरस प्रति एकड़ बारानी क्षेत्रों में तथा 50 कि.ग्रा. नत्रजन+25 कि.ग्रा. फास्फोरस प्रति एकड़ सिंचित क्षेत्रों में) तथा शेष नत्रजन की मात्रा दो भागों में बांटकर 3 सप्ताह तथा 5 सप्ताह बाद प्रयोग करें। उर्वरकों की मात्रा मिट्टी परीक्षण के आधार पर ही प्रयोग करनी चाहिए।

10. बुवाई के 21 दिन बार विरलन करना तथा जहां पौधे कम हों वहां पर खाली जगह भरना। सिंचाई करके या वर्षा वाले दिन यह काम अति उचित है ताकि प्रति एकड़ पौधों की संख्या उचित रहे।

11. फुटाव, फूल आना तथा बीज की दूधिया अवस्था में वर्षा न होने की स्थिति में सिंचाई करना अत्यन्त आवश्यक है तथा वर्षा आधारित क्षेत्रों में नमी संरक्षण के विभिन्न तरीकों का प्रयोग करना भी बहुत जरूरी है।

बाजरा के उन्नत संकर किस्मों की उत्पादन क्षमता 50-55 मन प्रति एकड़ तक पहुंच चुकी है, लेकिन यह तभी संभव हो सकता है, जब सभी बाजरा उत्पादक किसान भाई उपर्युक्त सभी बातों पर ध्यान रखेंगे।

मक्की की फसल में खरपतवार नियंत्रण

मक्की हरियाणा राज्य में खरीफ व बसंत ऋतु में बोई जाने वाली पंचकूला, अम्बाला, यमुनानगर, कुरुक्षेत्र व करनाल ज़िलों की प्रमुख फसल है। खरीफ की फसल बसंत ऋतु की फसल की अपेक्षा औसत पैदावार काफी कम है, जिसका मुख्य कारण बरसात बार-बार आने पर खरपतवारों का उचित नियंत्रण ना हो पाना है। खरपतवारों का उचित प्रबंध ना करने पर मक्की के उत्पादन में 50-60 प्रतिशत तक की कमी पाई जाती है।

मक्की की फसल में प्रारम्भ में बढ़वार मन्द गति से होती है। अत: खेत में पर्याप्त संख्या में खरपतवार उग कर फसल को भारी नुकसान पहुंचाते हैं। मक्की के खेत में भूमि की किस्म, जलवायु तथा मौसम के अनुसार अलग-अलग खरपतवारों की किस्में पाई जाती हैं। जैसे कि डीला, दूब, सवांक, पानपत्ता, बेल, बरू, मकड़ा, तकड़ी, घास, पैरा घास व हुलहुल इत्यादि।

अत: इन खरपतवारों की वृद्धि को प्रारंभिक जीवन काल में नष्ट करके खेत को खरपतवार विहीन रखना आवश्यक है। प्रयोगों के आधार पर पाया गया है कि फसल की बुवाई के 45 दिन तक खेत को खरपतवारों से मुक्त रखने में सम्पूर्ण जीवन काल तक खरपतारों को नष्ट करने के समान उपज प्राप्त होती है। मक्की के खेत में उगे खरपतवारों को नष्ट करने के लिए यांत्रिक तथा रासायनिक दोनों ही विधियों का प्रयोग किया जाता है। प्रारम्भ में यह धारणा थी कि मक्की के खेत गुड़ाई करके खरपतवारों के नष्ट हो जाने के साथ ही भूमि खुल जाती है, जिससे मृदा में वायु संचार के बढ़ जाने से अधिक उपज प्राप्त होती है।

शाकनाशी पदार्थों के उपलब्ध ना होने पर मक्की की फसल में 2-3 बार निराई-गुड़ाई करनी आवश्यक होती है। इसमें प्रथम निराई बोने के 15 दिन बाद एवं दूसरी 30-35 दिन बाद एवं दूसरी 30-35 दिन बाद की जानी चाहिए। पौधों में दूसरी निराई के समय अतिरिक्त तथा कमज़ोर पौधों की छँटनी भी की जाती है। फसल के घुटनों तक बढ़ जाने पर निराई-गुड़ाई नहीं करनी चाहिए। निराई खुरपी, 'हैंड हो' तथा बैलों या ट्रैक्टर चालित हो या कल्टीवेटर से की जाती है। ध्यान रखना चाहिए कि गुड़ाई 4-5 सैंटीमीटर से अधिक गहरी ना की जाए। गुड़ाई सावधानीपूर्वक इस प्रकार की जानी चाहिए कि जिससे पौधों तथा जड़ों को क्षति ना पहुंचने पाए। परन्तु बार-बार बरसात होने की वजह व निराई-गुड़ाई के समय पर उपलब्ध ना होने की वजह से रासायनिक खरपतवारनाशी की ज़रूरत पड़ती है। इस दिशा में 400 से 600 ग्राम एट्राजीन (50 प्रतिशत घुलनशील पाऊडर) प्रति एकड़ 200 से 250 लीटर पानी में नमी रहने पर इस रसायन की प्रभावकारी शक्ति बढ़ जाती है। परन्तु एट्राजीन केवल सवांक, मकड़ा व कुछ चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों का ही नियंत्रण करती है। अगर खेत में संकरी चौड़ी पत्ती व डीला जाति के खरपतवार होते हैं। टैबोंट्रायोन (लोडिस 34.4 प्रतिशत घु.पा.) का 115 मिलीलीटर तैयार शुद्ध मिश्रण 400 मिलीलीटर चिपचिपे पदार्थ को 200 लीटर पानी की मात्रा बुवाई के 10 से 20 दिन बाद या खरपतवार की 2-3 पत्ती अवस्था पर प्रति एकड़ छिड़काव करें।

डॉ. एस.एस. पुनिया, डॉ. सुशील कुमार सिंह तथा कार्तिक, सस्य विज्ञान विभाग, हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

शुभांशु शुक्ला अंतरिक्ष में बने किसान, मेथी-मूंग उगाई

भारतीय अंतरिक्ष यात्री शुभांशु शुक्ला अपने अंतरिक्ष प्रवास के अंतिम चरण में एक किसान की भूमिका में नजर आ रहे हैं। उन्होंने 'पेट्री डिश' में मूंग और मेथी उगाई, इसे अंतर्राष्ट्रीय अंतरिक्ष केंद्र (आईएसएस) के फ्रीजर में रखा एवं इनकी तस्वीर साझा की। शुक्ला ने यह कार्य एक अध्ययन के तहत किया है ताकि पता लगाया जा सके कि सूक्ष्म गुरुत्वाकर्षण अंकुरण और पौधों के प्रारंभिक विकास को कैसे प्रभावित करता है।

एक्सिओम-4 यान से आईएसएस पहुंचे शुक्ला और उनके साथी कक्षीय प्रयोगशाला में 12 दिन बिता चुके हैं। उनके फ्लोरिडा तट पर मौसम की स्थिति के आधार पर, 10 जुलाई के बाद किसी भी दिन पृथ्वी पर लौटने की उम्मीद है। अमेरिकी अंतरिक्ष एजेंसी नासा ने अब तक आईएसएस से एक्सिओम-4 यान के अलग होने की तारीख की घोषणा नहीं की है। आई.एस.एस. पहुंचे एक्सिओम-4 मिशन की अवधि 14 दिनों तक है। शुक्ला ने बुधवार को एक्सिओम स्पेस की मुख्य वैज्ञानिक लूसी लो के साथ बातचीत में कहा, "मुझे बहुत गर्व है कि इसरो (भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन) देश भर के राष्ट्रीय संस्थानों के साथ सहयोग करने और कुछ शानदार शोध करने में सक्षम रहा है, जो मैं सभी वैज्ञानिकों और शोधकर्ताओं के लिए आईएसएस पर कर रहा हूं। ऐसा करना रोमांचक और आनंददायक है।" मेथी और मूंग के बीज को अंकुरित करने के प्रयोग का नेतृत्व दो वैज्ञानिकों-रविकुमार होसामणि और सुधीर सिद्धपुरेड्डी कर रहे हैं।

कई पीढ़ियों तक उगाया जाएगा बीजों को

एक्सिओम स्पेस की ओर से जारी एक बयान में कहा गया है कि एक बार पृथ्वी पर वापस आने के बाद, बीजों को कई पीढ़ियों तक उगाया जाएगा, ताकि उनके आनुवंशिकी, सूक्ष्मजीवी पारिस्थितिकी तंत्र और पोषण प्रोफाइल में होने वाले बदलावों का पता लगाया जा सके। एक अन्य प्रयोग के तहत शुक्ला सूक्ष्म शैवाल ले गए हैं, जिनकी भोजन, ऑक्सीजन और यहां तक कि जैव ईंधन उत्पन्न करने की क्षमता की जांच की जा रही है।

शुक्ला ने बीजों के उगाने के प्रयोग की भी तस्वीरें लीं। इसके तहत मिशन के बाद भी कई पीढ़ियों तक छह किस्में उगाई जाएंगी। इसका लक्ष्य अंतरिक्ष में टिकाऊ खेती के लिए आनुवंशिक विश्लेषण हेतु वांछनीय गुणों वाले पौधों की पहचान करना है। उन्होंने कहा, 'एक विशेष अनुसंधान जिसे लेकर मैं सचमुच उत्साहित हूं, वह है स्टेम कोशिका अनुसंधान, जिसमें वैज्ञानिक यह पता लगाने की कोशिश कर रहे हैं कि क्या स्टेम कोशिकाओं में पूरक (सप्लीमेंट्स) जोड़कर स्वास्थ्य लाभ, वृद्धि या चोट से उबरने में तेजी लाना संभव है। मैं इसे करने के लिए सचमुच उत्साहित हूं।'

गगनयान प्रणोदन प्रणाली के 'हॉट टेस्ट' सफलतापूर्वक पूरे

भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) ने अपने प्रणोदन परिसर में गगनयान सेवा मॉड्यूल प्रणोदन प्रणाली (एसएमपीएस) के दो 'हॉट टेस्ट' (तप्त परीक्षण) सफलतापूर्वक पूरे किए। 'हॉट टेस्ट' एक प्रकार का परीक्षण होता है, जिसमें रॉकेट या अंतरिक्ष यान की प्रणोदन प्रणाली को वास्तविक स्थितियों में चलाकर परखा जाता है।

कृषि एवं कृषि संबंधित विषयों पर आधुनिक जानकारी लेने हेतु पढ़ें

खेती संदेश

हिन्दी साप्ताहिक समाचार पत्र

कृषि एवं कृषि सहायक धंधों की आधुनिक जानकारी से भरपूर

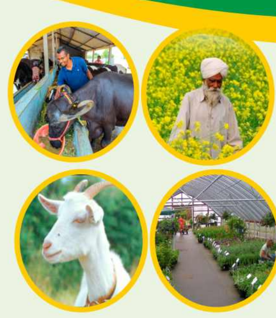

एक वर्ष में 52 अंक

किसान भाईयों व डीलर/डिस्ट्रीब्यूटरों के लिए

चंदों में विशेष छूट

एक वर्ष 300/- रुपए | दो वर्ष 500/- रुपए

पेमेंट करने के पश्चात् अपना डाक पता इस नंबर पर भेजें :

90410-14575

KHETI DUNIYAN
TID - 62763351

चंदे भेजने हेतु QR कोड सकैन करें।

खेती संदेश (कृषि साप्ताहिक)

के.डी. कॉम्पलैक्स, गऊशाला रोड, पटियाला

2047 तक मक्का उत्पादन दोगुना करने का लक्ष्य : शिवराज सिंह

कृषि मंत्री शिवराज सिंह चौहान ने कहा है कि भारत 2047 तक मक्का उत्पादन को मौजूदा 42.3 मिलियन टन से बढ़ाकर 86 मिलियन टन तक पहुंचा सकता है। चौहान उद्योग संगठन फिक्की (FICCI) द्वारा आयोजित 11वें मक्का सम्मेलन को संबोधित कर रहे थे। उन्होंने उच्च स्टार्च वाले अधिक उपज देने वाले बीजों के विकास पर जोर दिया। चौहान ने कहा कि भारत दुनिया का पांचवां सबसे बड़ा मक्का उत्पादक देश है और बिना जेनेटिकली मोडिफाइड (GM) बीजों के भी उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है। भारत की औसत मक्का उत्पादकता 3.7 टन प्रति हैक्टेयर है। कुछ राज्य जैसे पश्चिम बंगाल और बिहार राष्ट्रीय औसत से बेहतर प्रदर्शन कर रहे हैं, लेकिन समग्र रूप से उपज में वृद्धि की आवश्यकता है।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR) ने अब तक 265 मक्का किस्में विकसित की हैं, जिनमें 77 हाइब्रिड और 35 बायो-फोर्टिफाइड किस्में शामिल हैं। लेकिन मंत्री ने कहा कि अभी और काम करने की जरूरत है।

मक्के में स्टार्च की मात्रा 65-70 प्रतिशत से बढ़ाकर 72 प्रतिशत तक करने की जरूरत है ताकि इसका उपयोग और बेहतर ढंग से किया जा सके।

धान की बजाय मक्के पर ध्यान केंद्रित करें

केंद्रीय मंत्री शिवराज सिंह चौहान ने बताया कि भारत का मक्का उत्पादन 1900 के दशक में 10 मिलियन टन था, जो अब 42.3 मिलियन टन तक पहुंच गया है। उत्पादन बढ़ाने के लिए पंजाब और हरियाणा जैसे राज्यों को, जो अभी धान पर निर्भर हैं, मक्का की खेती की ओर रुख करना चाहिए। मंत्री ने कहा कि पहले मक्का के दाम न्यूनतम समर्थन मूल्य 2400 रुपए प्रति क्विंटल से नीचे चल रहे थे, लेकिन सरकार के 2025-26 तक 20 प्रतिशत एथेनॉल ब्लेंडिंग लक्ष्य के बाद इनमें मजबूती आई है। उन्होंने नकली बीज, खाद और कीटनाशकों की बिक्री पर चिंता जताई और इस पर कार्रवाई के लिए एक सख्त नीति ढांचे की जरूरत बताई। जब पोल्ट्री उद्योग के प्रतिनिधियों ने मक्का की बढ़ती कीमतों पर चिंता जताई, तो मंत्री ने कहा, "मैंने उनसे कहा कि पहले किसानों को सही दाम मिलने दो, हम आपकी समस्या का समाधान दूसरे तरीके से करेंगे। उत्पादन और बढ़ना चाहिए।"